Con. 3. XI.7.49
320

अंक 11
संख्या 7

सोमवार
21 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3857–3928

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 21 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — (जारी)

***अध्यक्ष महोदयः** अब हम संविधान पर आगे विचार प्रारम्भ करते हैं। सरदार भूपेन्द्र सिंह मान अब अपनी बात कहेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): संविधान पर विचार शुरू करने से पहले, मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, श्रीमान, इस बात की ओर कि मैंने इस आशय के एक प्रस्ताव की सूचना भेज रखी है कि सभा भारत के राष्ट्रीय-गान के प्रश्न पर विचार करे। क्या आप कृपा कर सभा को यह बतलायेंगे कि इस प्रश्न पर यहां विचार किया जायेगा या नहीं और अगर किया जायेगा तो कब?

***अध्यक्षः** गत शनिवार को हमने कार्य संचालन-समिति की एक बैठक की थी किन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रश्न उस समय हमारे सामने नहीं आ पाया था अतः इस प्रश्न पर उस समिति की राय नहीं ली गई। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये, इस समिति की बैठक मैं फिर बुलाऊंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इस प्रश्न पर इसी अधिवेशन में विचार किया जायेगा या जनवरी वाले अधिवेशन में?

***अध्यक्षः** इस पर इस सभा में कब विचार किया जायेगा, इस बारे में कुछ भी कहने से पहले मुझे इस मसले को कार्य संचालन-समिति के सामने रखना होगा।

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान** (पूर्वी पंजाबः सिख): जहां तक कि आम बातों का सम्बन्ध है, यहां संविधान के विभिन्न पहलुओं पर, हमारे पूर्व वक्ता लोग अपना विचार व्यक्त कर चुके हैं। मैं नहीं समझता कि इन पर मैं कुछ और प्रकाश डाल सकूंगा। फिर भी सामान्य तौर पर मैं एक बात का जिक्र अवश्य करूंगा और वह यह कि संविधान में सारी शक्तियां केन्द्र को दे दी गई हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न राज्यों का महत्व या उनकी स्थिति एक प्रतिष्ठित निगम से अधिक नहीं रह गई है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं श्रीमान कि इस नीति के कारण संघ के विभिन्न घटकों को अपनी समुन्नति करने की बहुत कम सुविधा रह जायेगी। इससे उनकी प्रगति में बाधा पड़ना अनिवार्य है। लोकतन्त्र के समुचित विकास के

[सरदार भूपेन्द्र सिंह मान]

लिये सर्वाधिक आवश्यक यह होता है कि घटकों को अपने विकास का पूरा अवसर मिले पर अपनी वर्तमान व्यवस्था में उनको इसका मौका न मिल पायेगा। इस सम्बन्ध में यहां यह तर्क उपस्थित किया गया है कि वर्तमान स्थिति में, जब कि हमारा राज्य अभी एक नवजात राज्य है केन्द्र के साथ में अधिक अधिकार देना ही हमारे लिये आवश्यक है। इस प्रकार के तर्क से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह व्यवस्था सम्भवत: थोड़े दिनों के लिये ही की गई है और मैं यही महसूस करता हूं कि अन्ततोगत्वा इसके लिये संविधान में संशोधन अवश्य किये जायेंगे और उम्मीद है बहुत जल्द किये जायेंगे जिस से कि भारतीय संघ के अंगभूत विभिन्न घटकों को और अधिक स्वातन्त्र्य प्राप्त हो सके। इस सम्बन्ध में, मैं यह महसूस करता हूं कि कश्मीर राज्य संघ के और राज्यों से कहीं अच्छी स्थिति में है और उसकी इस स्थिति पर अवश्य यही मुझे ईर्ष्या होती है।

दूसरी बात जिसका यहां कई वक्ताओं ने उल्लेख है बल्कि जिस पर आपत्ति की है वह यह है कि नशाबन्दी में बारे में संविधान में यह नहीं कहा गया है कि इसे अविलम्ब दूर किया जायेगा। मुझे खुशी है इस बात की कि संविधान में नीति के तौर पर नशाबन्दी को मान लिया गया है और स्थिति के अनुसार इसको क्रियान्वित करने की स्वतन्त्रता घटकों को दी गई है। बहुत से महत्वपूर्ण सुधार और रचनात्मक योजनायें केवल इसलिये अभी छोड़ दी गई हैं कि हमारे पास कोष की कमी है। मुद्रा-स्फीति का प्रश्न भी हमारे सामने है। मैं तो ऐसा अनुभव करता हूं कि नशाबन्दी की बातें और देश भर में इसे अविलम्ब लागू करने की बातें लोग केवल मनोरंजन के लिये कहते हैं। वरना जहां तक कि व्यवहारिकता का सम्बन्ध है, मैं तो यही समझता हूं कि इन मित्रों को, जो आमोद-प्रमोद को हर तरह से मिटाने पर ही तुले हुए हैं अभी इसके लिये कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी होगी। मुझे मालूम है कि पंजाब में जैसा कि अन्य प्रान्तों में भी हो रहा है, नशाबन्दी की योजना को कार्यान्वित कर रहे हैं ऐसे प्राधिकारी जिन्हें खुद इस योजना पर कोई विश्वास नहीं है। जब ये लोग गांवों में उस बात की छानबीन करने जाते हैं कि वहां कहीं गैर नाजायज तौर पर शराब तो नहीं बनाई जा रही है, तो उन्हें आदेश इस बात का रहता है कि वह उन पात्रों को तोड़ फोड़ दें जिनमें कि नाजायज शराब तैयार की जाती है। परन्तु बजाय बर्तनों को तोड़ने के पुलिस करती यह है कि वह पात्रों की रखी शराब खुद पी जाती है और पूछने पर यह कहती है कि उन्हें आदेश इस बात का दिया गया है कि "जो लोग नाजायज शराब बनाते हैं उनकी शराब उनसे छीन लो और हमने यही किया है। ऐसी सुन्दर चीज को धूल में बर्बाद करने के बजाय हमने इसका सदुपयोग कर दिया है और सारा मद्य हम खुद पी गये हैं।" यह तो है स्थिति। हमें पहले ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिये कि लोग नशाबन्दी को दिल से स्वीकार कर लें और फिर उसके बाद हमें इस योजना को क्रियान्वित करने में लगना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि यहां बोलने के लिये मैं खास तौर पर इसलिये खड़ा हो रहा हूं कि मुझे आश्चर्य है इस बात पर कि यहां मुझ से पूर्व बोलने वालों में बहुत कम लोगों ने उन प्रावधानों के बारे में कुछ कहा है जो संविधान में अल्पसंख्यकों के लिये रखे गये हैं। केवल एकमात्र सदस्य रेवरेण्ड निकल्स राय ने ही इसकी चर्चा यहां की है और उन्होंने इस बात पर खुशी जाहिर की है

कि अल्पसंख्यकों को जो रियायतें दी गई थीं वह अब उठा दी गई हैं। इससे मुझे इस बात की याद आ गई है कि किस तरह यहां श्री निकल्स राय ने, आदिम जातियों को रियायत देने के लिये, परिमाण देने के लिये और इन प्राप्त परिमाणों को पाने के लिये हमेशा यहां जोर लगाया है। मैं उनको यह बताना चाहता हूं कि आदिमजाति-भावना भी उतनी ही अच्छी या बुरी बात है जितनी कि साम्प्रदायिक-भावना है। इन परिमाणों को किसी तरह पा लेने के बाद अब वह हमें जो यह उपदेश दे रहे हैं कि साम्प्रदायिक-भावना एक बड़ी खराब बात है वह उनको शोभा नहीं देता है। उनका यह उपदेश देना अब बिल्कुल बेमतलब है। जब हमने संविधान-निर्माण का कार्य शुरू किया था उस समय संविधान-निर्माताओं को इस बात की चिन्ता थी कि अल्पसंख्यकों को पूरा सन्तोष प्राप्त हो जाना चाहिये। ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया वातावरण साफ होता गया और हम में परस्पर विश्वास-भावना बढ़ने लगी और हम एक-दूसरे पर अधिक भरोसा करने लग गये और आपसी रजामन्दी से हमने कई जटिल समस्याओं का निपटारा कर लिया। किन्तु अब सर्वत्र यह धारणा हो गई है और जहां तक मेरे समुदाय का सम्बन्ध है, यह ख्याल पैदा हो गया है कि संविधान-निर्माण के आखिरी दिनों में, अल्पसंख्यक-प्रश्न को, जो बहुसंख्यक समुदाय पर एक पवित्र थाती के रूप में सौंपा गया था, बिना सोचे विचारे टाल दिया गया है और अल्पसंख्यकों की इच्छाओं के विरुद्ध बिना उनकी स्वीकृति लिये इसे टाल दिया गया है। शुरू में संविधान-सभा को इस बात की चिन्ता थी कि विभिन्न अल्पसंख्यक वर्गों को पूरा सन्तोष मिलना चाहिये पर मैं यह महसूस करता हूं कि अब सभा अपने उस ख्याल से हट रही है।

इस सभा का जिस रूप में गठन हुआ है श्रीमान उसमें हमसे यह उम्मीद जरूर की जाती है कि हम यहां यह बतायें कि इस संविधान के सम्बन्ध में देश के उन विभिन्न समुदायों का ख्याल क्या है, उनकी प्रतिक्रिया क्या है जिनका हम सब यहां प्रतिनिधान कर रहे हैं। यह एक तथ्य है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि हम यहां विभिन्न वर्गों एवं साम्प्रदायिक हितों का ही प्रतिनिधान कर रहे हैं। मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा अगर यहां यह न बताऊं कि मेरे सम्प्रदाय की संविधान के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया क्या है; पूर्वी पंजाब के सिख समुदाय की प्रतिक्रिया क्या है यह मुझे बताना ही चाहिये। उनका ख्याल यह है कि श्रीमान, कि इस संविधान को अपना पूर्ण समर्थन वह नहीं दे सकते हैं; इसका सम्यक अनुमोदन वह नहीं कर सकते हैं। उनको यह याद है कि शुरू में, जहां तक कि अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, यह बात तय पाई थी कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को, प्रशासन-कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार, नौकरियों में समुचित प्रतिनिधान दिया जायेगा और केन्द्र में तथा विभिन्न राज्यों में एक विशेष प्राधिकारी इस बात के लिये नियुक्त किया जायेगा कि वह इस बात को देखता रहे कि जहां तक अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, संविधान पर किस तरह अमल किया जा रहा है। पर अब वह ऐसा महसूस करते हैं कि संविधान-निर्माण के आखिरी दिनों में सभा का यह रुख बिल्कुल बदल गया और अनुसूचित जातियों के सिवाए अन्य सभी अल्पसंख्यकों की उपेक्षा कर के उसने यहां नये-नये उपबन्ध रख दिये हैं। हम यह महसूस करते हैं कि यह परिवर्तन बिना सोचे समझे बड़ी आसानी से कर दिये गये हैं और सरदार पटेल की राज्य की उपेक्षा करके किये गये हैं जिन्होंने प्रतिवेदन में यह कहा था कि जो निर्णय हमने कर लिये हैं अब उसे हमें असानी से बिना सोचे समझे नहीं बदलना चाहिये। उनकी इस राय के

[सरदार भूपेन्द्र सिंह मान]

बावजूद भी पूर्व स्वीकृत निर्णयों में परिवर्तन कर दिया गया है और मैं यह कहूंगा कि जहां तक सिखों का सम्बन्ध है उनकी राय लिये बिना यह परिवर्तन किये गये हैं। हम लोग यह जोर दे कर कहते हैं कि सभी अपने पहले की बात से हट गई है। शुरू में हमारा तरीका यही रहा है कि जब भी कोई परिवर्तन करने का ख्याल किया गया है, अल्पसंख्यकों को उस बारे में हमेशा राय ली गई है। किन्तु अब अपने इस पुराने तरीके को ताक पर रख कर यहां परिवर्तन किये गये हैं। इस बारे में सम्बन्धित समुदाय के प्रतिनिधियों से कोई राय नहीं ली गई। सिख-समाचार पत्र इस बारे में बहुत ही क्षुब्ध हैं और उनमें रोजाना इस सम्बन्ध में विरोध के प्रस्ताव और समाचार देखने को मिलते हैं। सिखों को इससे बड़ा आघात पहुंचा है और वह आश्चर्य में हैं कि पूर्व स्वीकृत निर्णयों को अब अन्तिम समय में भला क्यों इस तरह बदल दिया गया है। इस बात को लेकर यहां बहुत कुछ कहा गया है कि सिख समुदाय के पिछड़े वर्ग अब अनुसूची में शामिल कर लिये जायेंगे और हिन्दू समाज की अनुसूचित जातियों की तरह उनको भी अनुसूची में स्थान दिया जायेगा और उनको अन्य पिछड़े दलित वर्गों की तरह ही समझा जायेगा। पर अगर यही बात उस भावना से की गई होती कि उनकी वाजिब मांगों को मंजूर करना ही चाहिये न कि इस भावना से कि हम उनके लिये त्याग कर रहे हैं और रियायत दे रहे हैं तो उनका क्षोभ बहुत कुछ बचाया जा सकता था। अब हम यह देख रहे हैं कि पहले जो यह निर्णय किया गया था कि सिखों की अनुसूचित जातियों को वही सुविधायें प्राप्त रहेंगी जो हिन्दू समाज की अनुसूचित जातियों को दी जायेंगी, वह भी अब निकाले गये आदेशों के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। अब सिखों की अनुसूचित जातियों को अन्य अनुसूचित जातियों के समान रियायतें न दी जायेंगी। पटियाला राज्य में, सिखों के दलित वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल नहीं किया जायेगा। मैं तो इसकी कल्पना ही नहीं कर पाता हूं कि सिख समाज के दलित वर्गों को जो वस्तुतः शैक्षिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं उनको केवल इसलिये दलित या पिछड़ा नहीं माना जायेगा कि वह पटियाला राज्य में रह रहे हैं जब कि बिल्कुल पास के ही पूर्वी पंजाब के सिख समाज के दलित वर्ग को सभा पिछड़ा मानने पर तैयार है। जहां तक कि संयुक्त प्रान्त का सम्बन्ध है, मुझे विश्वास है कि वहां सिखों का जो पिछड़ा हुआ वर्ग है वह समाज के निम्नतम स्तर पर ही अवस्थित है पर वहां उनको वह रियायतें नहीं दी जायेंगी जो वहां के अन्य पिछड़े वर्गों को अर्थात, हिन्दू भाइयों की दी जायेंगी। आपने जो इनको रियायत देने की कृपा दिखाई है उसका महत्व भी इस विभेद के कारण सर्वथा जाता रहता है। अब यह किया गया है कि सभी पिछड़े वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। आज इस समय मैं आप से यह अनुरोध करूंगा और बार-बार यह अनुरोध करूंगा श्रीमान, कि सिख समाज के दलित एवं पिछड़े वर्गों को वही रियायतें मिलनी चाहिये, उनके साथ भी वही बर्ताव होना चाहिये जो देश के अन्य पिछड़े वर्गों को दिये जा रहे हैं।

एक बात पर मैं और प्रकाश डाल दूं श्रीमान। इस पर यहां रोशनी नहीं डाली गई है और इस बारे में कभी-कभी यहां गलतफहमी पैदा हो गई है। पूर्वी पंजाब में कुछ एक ऐसा सुसम्बद्ध आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा है, दोनों समाजों के बीच कुछ ऐसी आत्मिक ऐक्य है कि वहां अनुसूचित जाति का एक भाई हिन्दू है और उसका

अपना ही भाई सिख हो गया है और लम्बे केश रखता है। पर जहां तक उनके पेशा या काम का सम्बन्ध है दोनों एक ही काम करते हैं। दोनों के साथ समाज में एक सा बर्ताव किया जाता है। भले ही वह सिख है पर उसे कुएं से पानी नहीं भरने दिया जाता है। दोनों सहोदर भाई हैं पर एक हिन्दू है और दूसरा सिख। अगर एक भाई मोची का काम करता है तो दूसरा भी वही काम करता है। अगर एक भंगी का काम करता है तो दूसरा भी भंगी का ही काम करता है। पर केवल इसलिये कि एक के सर पर लम्बे बाल हैं उसे वह अधिकार नहीं दिये जायेंगे जो उसके सहोदर भाई को दिये जायेंगे। इनको अन्य समाज के पिछड़े वर्गों के समान अधिकार देना कोई रियायत करना नहीं है बल्कि आज भी वास्तविक स्थिति को स्वीकार करना है।

फिर भी मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि संविधान के निष्प्राण ढांचे का या उसमें लिपिबद्ध किये गये शब्दों का कोई महत्व नहीं होता है। मुझे विश्वास है कि समय के प्रवाह के साथ यहां ऐसी रूढ़ियां पैदा होंगी जो वास्तविकता से संगत होंगी और तेजी से बड़े-बड़े परिवर्तन लाने वाली होंगी। मुझे इस बात का विश्वास है श्रीमान कि अन्ततोगत्वा जनता में निहित सद्बुद्धि ही हमारे लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होगी, संविधान में लिपिबद्ध किये गये कोरे अक्षरों का यहां प्राधान्य न रहेगा बल्कि प्राधान्य रहेगा उस भावना का जिससे संविधान का निर्माण किया जा रहा है और देशवासियों को सभी क्षेत्रों में—आर्थिक एवं प्रशासकीय कार्यों में—सर्वत्र न्याय पाने का समान अवसर मिलेगा।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं धन्यवाद देता हूं मसौदा समिति को कि उसने यह वृहत कार्य सम्पादित किया है। मैं धन्यवाद देता हूं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को उस कठोर काम के लिये जिसको उन्होंने ग्रहण कर रखा था पर इसके लिये मसौदा समिति की तरफ से धन्यवाद का एक शब्द भी उनको नहीं मिल पाया है। खास तौर पर मैं धन्यवाद देता हूं डॉ. अम्बेडकर को कि उन्होंने संविधान निर्माण का महान कार्य इस खूबी से पूरा किया है और इस शानदार ढंग से अपने मसौदे की यहां वकालत की है। मैं जानता हूं कि उनके सामने बड़ी कठिनाइयां थीं और इसका एक उदाहरण है मेरा वह संशोधन जिसे मैंने नाजायज तलाशियों के खिलाफ, गृहों और व्यक्तियों की तलाशी के खिलाफ पेश किया था। सभा ने उसे पहले तो स्वीकार किया पर एक सप्ताह तक स्थगित रखने के बाद विचार किये जाने पर सभा ने उसे नामंजूर कर दिया।

निस्संदेह आज का यह अवसर हमारे लिए एक बहुत ही पवित्र और ऐतिहासिक अवसर है। देश के जीवन में आज का दिन बड़ी ही खुशी का दिन है जब कि शताब्दियों की पराधीनता के बाद, विदेशी प्रभुता के बाद आज हम अपने भाग्य के निर्माता बन पाये हैं और अपने लिये संविधान बना पाये हैं। इस संविधान से कोई सहमत हो या असहमत पर है यह अपना संविधान। आज हम स्वाधीन अवश्य हो गये हैं पर संविधान द्वारा यह गारन्टी नहीं मिलती है कि सभी वर्गों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त रहेगी। इस संविधान में लचीलापन नहीं है। प्रधान मंत्री माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम से जो इस आशय का एक संशोधन आया था कि संविधान के उपबन्धों में पांच साल के अन्दर असाधारण बहुमत द्वारा संशोधन किया जा सकता है, वह पेश नहीं किया गया। इसलिए अगर आज यह संविधान

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

एक बहुमत प्राप्त दल द्वारा या एक सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत है तो आगामी पीढ़ी के लिये इसमें संशोधन करना बड़ा कठिन होगा। वह इसमें तब तक परिवर्तन नहीं कर सकते हैं जब तब कि दो तिहाई का बहुमत उनको न प्राप्त हो जाये। सो न केवल हमने अपने लिये यह संविधान तैयार किया है बल्कि अपनी सन्ततियों पर इसे लाद भी दिया है। कहने का मतलब यह है कि हमारा यह फर्ज था कि संविधान में लचीलापन रखते पर हमने ऐसा नहीं किया है।

मुझे इस बात का बड़ा अभिमान है कि भारत को एक असाम्प्रदायिक राज्य घोषित किया गया है। 9 से 30 तक के सभी अनुच्छेदों के उपबन्धों में धर्म, जाति या प्रजाति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया गया है तथा सरकारी नौकरियों के बारे में या सम्पत्ति को रखने या देने के बारे में सबको समान अवसर दिये गये हैं।

आज देश में जो साम्प्रदायिक कटुता और कलह दिखाई दे रहे हैं उनको हमें खत्म करना ही होगा। संविधान को हमें उसी भावना से कार्यान्वित करना होगा जिस भावना से इसकी रचना की गई है। मैं साग्रह इस बात की अपील करूंगा कि हमें अपने आदर्शों के अनुसार ही चलना चाहिये ताकि लोग यह न कहने पायें कि हम अपने सिद्धान्तों पर अमल नहीं करते हैं। आज मैं यह देख रहा हूं श्रीमान कि रक्षा विभाग और रेलवे विभाग की जो नीति है वह हमें आर्थिक आत्मघात की ओर लिये जा रही है और मैं यह निवेदन करूंगा कि सबको समान अवसर और समान रूप से नियुक्ति देने के बारे में जो उपबन्ध हमने मंजूर किये हैं उन्हें अगर हमने सच्चे दिल से मंजूर किया है तो इन दोनों विभागों में जो साम्प्रदायिक कार्रवाइयां चल रही हैं उनको हमें रोकना होगा। भारत में मुसलमान होना अनर्हता की बात न मानी जानी चाहिये। मुझे विश्वास है कि यहां का बहुसंख्यक समुदाय मुसलमानों के दिलों में भरोसा और विश्वास पैदा करेगा ताकि वह इस देश को अपना देश समझ सकें।

दूसरी समस्या है यहां अल्पसंख्यकों की समस्या जिसका जिक्र यहां माननीय मित्र सरदार मान ने किया है। मुझे इस बात का अभिमान है श्रीमान कि जब यहां संविधान का द्वितीय पठन हो रहा था उस समय सर्वप्रथम मैंने ही स्थान रक्षण की व्यवस्था उठाने का प्रस्ताव रखा था। उस समय अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था के लिये वकालत मैंने जरूर की थी। अनुपाती प्रतिनिधान की बात तो नहीं मंजूर की गई पर स्थान रक्षण की व्यवस्था को उठाने की बात को सभा ने स्वीकार कर लिया। अब तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि गत साठ साल से हम जिन सुविधाओं और विशेषाधिकारों का उपयोग करते आये हैं वह अब खतम कर दिये गये हैं और हमें अब यहां के बहुसंख्यक समुदाय की सद्भावना पर ही निर्भर करना होगा और उनकी सद्भावना से ही हम सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं। मुझे तो केवल इतना ही कहना है कि:

"तमाशाये अहले करम देखते हैं"

अपने भविष्य के लिये अब हम यहां के बहुसंख्यक समुदाय की उदारता की ओर आशा लगाये बैठे हैं। हमने इस व्यवस्था को स्वीकार किया है इस लिये कि बहुसंख्यक समुदाय की यही इच्छा थी। जिन लोगों ने इसे स्वीकार किया है वह यहां किसी के प्रतिनिधि नहीं रह गये हैं। मैं अथवा श्री तजम्मुल हुसैन या बेगम ऐजाज रसूल—सभी—मुस्लिम लीग के भंग हो जाने के बाद वस्तुत: यहां

किसी के प्रतिनिधि नहीं रह गये हैं। इसलिये मेरा कहना यह है कि हम एक बहुत बड़ा प्रयोग प्रारम्भ करने जा रहे हैं। आज देश में जो तीव्र साम्प्रदायिक कटुता फैली हुई है, उसमें, परिमाणों के न रह जाने पर मुसलमान आगामी निर्वाचन में सफल होंगे, उनको नौकरियों में जगह मिल पायेंगी यह कहना सन्देहास्पद ही है। आशा करता हूं और यह विश्वास करता हूं कि कांग्रेस के शीर्ष स्थानीय नेता लोग, खास करके वह लोग जो पृथक् प्रतिनिधान की व्यवस्था को उठाने के लिये जिम्मेदार हैं, इस बात की कोशिश करेंगे कि यहां आगे चल कर लोगों में परस्पर सहयोग की भावना पैदा हो और सार्वजनिक जीवन में मुसलमानों को समुचित स्थान मिले। आगरा के अपने मित्र श्री कपूर को मैं धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपना संशोधन पेश करते समय अपनी वक्तृता में यहां यह कहा था कि अब बहुसंख्यक समुदाय को अपने उस महान दायित्व को समझना चाहिये जो पृथक् प्रतिनिधान प्रणाली की व्यवस्था के उठ जाने से उन पर आ पड़ा है।

दूसरी बात, जिस पर मैंने गम्भीर आपत्ति की थी और आज भी करता हूं वह है आपातशक्तियां जो राष्ट्रपति को दी गई हैं। यह एक मानी हुई बात है कि राष्ट्रपति का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं किया जायेगा। वह बहुमत-प्राप्त दल का ही आदमी होगा। उसकी कारवाइयां बहुमत प्राप्त दल की इच्छा के अनुसार ही होंगी। विरोधी दलों को सम्भवतः समुचित न्याय न प्राप्त हो सकेगा। यदि बहुमत प्राप्त दल यह चाहता है कि अनुच्छेदों में दिये कारणों के आधार पर संविधान निलम्बित कर दिया जाये तो वह निलम्बित कर दिया जायेगा। मेरी राय में प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था तो एक दिखावे की बात है। अगर कुछ प्रान्तों में विरोधी दल अधिकार में आ जाता है और केन्द्र यह नहीं चाहता है कि वह वहां शासनारूढ़ रहे तो किसी बहाने का सहारा लेकर संविधान को निलम्बित किया जा सकता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि केन्द्र को यह देखना चाहिये कि नीति सम्बन्धी बातों को लेकर संविधान को निलम्बित न किया जाये। संविधान का निलम्बन तो केवल ऐसी ही अवस्था में किया जाना चाहिये जब कि राज्यों में भयंकर गृह कलह पैदा हो गया हो, अशान्ति और विद्रोह पैदा हो गया हो या वहां संविधान के अनुसार प्रशासन का चलाना ही असम्भव हो गया हो। अमेरिका में अभी हाल के एक मामले में ऐसा कहा गया है: "अमेरिका का संविधान एक ऐसा संविधान है जो शान्ति और युद्धकाल में समान रूप से शासकों और नागरिकों के लिये कानून का काम करता है और हमेशा, हर स्थिति में सभी वर्गों के लोगों को रक्षण देता है। यह सिद्धान्त कि शासन पर संकट आने के काल में संविधान के किसी उपबन्ध को निलम्बित किया जा सकता है एक खतरनाक सिद्धान्त है। मनुष्य की बुद्धिचातुरी अब तक ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं निकाल सकी है जो इतने अपकारक परिणामों से परिपूर्ण हो जितना कि यह सिद्धान्त है। ऐसा सिद्धान्त राष्ट्र को सीधे अराजकता की ओर, स्वेच्छाचारी राजतन्त्र की ओर ले जाता है।" मैं आशा करता हूं और विश्वास करता हूं कि परीक्षण के रूप में उनका प्रयोग कर लेने पर पांच या दस साल के अन्दर इन उपबन्धों को केन्द्र निरसित कर देगा और प्रान्तों को पूरी आजादी दे देगा।

संविधान के बारे में दूसरी आपत्ति यह है कि अनुच्छेद 15 में "without due process of law" (बिना समुचित विधि प्रक्रिया के) शब्दों को नहीं रखा गया

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

है और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। आज भी मैं यही मानता हूं और गम्भीरता के साथ मानता हूं कि इन शब्दों के न रहने से और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों को परिसीमित कर देने से देशवासियों को नागरिक स्वातन्त्र्य पूर्ण रूपेण नहीं प्राप्त हो सकता है। जब "without due process of law" शब्द नहीं रखे गये हैं और विधान-मण्डल मूलाधिकारों पर आघात करता है उस अवस्था में तो विधि द्वारा विहित प्रक्रिया अगर पूर्ण कर दी जाती है तो किसी को एक अनुचित कानून के अधीन फांसी मिल सकती है। मेरा कहना यह है। हमने यह संविधान बनाया है ऐसे समय पर जब कि देश में अव्यवस्था थी। अतः अब मैं यही आशा और विश्वास करता हूं कि देश में पुनः शान्ति स्थापित होते ही अनुच्छेद 13 द्वारा दिये गये मूल अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध न रह जायेगा और "without due process of law" शब्दों को यहां अवश्य रख दिया जायेगा जैसा कि अमेरिका और अन्य देशों में है। इस पद संहति के रहने से ही व्यक्ति को स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है, अगर राष्ट्रपति की आपात-शक्तियां नहीं ले ली जाती हैं तो इसका परिणाम यही होगा कि देश में अव्यवस्था और अराजकता फैल जायेगी। केन्द्र के हाथ में बहुत ही अधिक शक्तियां दे दी गई हैं और उससे केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच संघर्ष का पैदा होना अनिवार्य है। आज यह संघर्ष हमें इसलिये नहीं दिखाई दे रहा है कि केन्द्र तथा प्रान्तों में एक ही दल अधिकारारूढ़ है। पर अगर प्रान्तीय विधान मण्डलों में दूसरे दलों के लोग चुन कर आ जाते हैं और केन्द्र तथा प्रान्तों में संघर्ष पैदा होता है तो उस हालत में सारे देश में सैनिक शासन लागू हो जायेगा और संविधान को निलम्बित कर दिया जायेगा। उस हालत में भारत एक विशाल कारागार बन जायेगा जिसमें राष्ट्रपति सुपरिन्टेंडेंट रहेगा और केन्द्रीय मंत्री लोग दर्शक रहेंगे। इसलिये मेरा कहना यही है कि इन दो उपबन्धों के विरुद्ध हमें गम्भीर आपत्ति है। मेरी राय में यह संविधान न तो संघात्मक संविधान है और न एकात्मक, यह न तो संसदात्मक संविधान और न असंसदात्मक। यह संविधान तो किसी ओर का नहीं हुआ है। इस शब्दों के साथ, इतनी शर्तें रखकर मैं इस संविधान का समर्थन करता हूं।

***श्री अरुण चंद्र गुहा** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज का दिन भारतवासियों के लिये एक गौरव का दिन है। आज शताब्दियों तक अपने तथा विदेशियों की पराधीनता में रहने के बाद हमें यह दिन नसीब हुआ है कि हमें अपने स्वतन्त्र राज्य के लिये संविधान बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ है। आज के दिन को भारतवासियों के लिये गौरव का दिन मैं इस लिये बता रहा हूं कि हाल के इतिहास में हमें कभी इस बात की शक्ति नहीं प्राप्त हो पाई है कि हम जिस तरह की शासन व्यवस्था पसन्द करते हों उसके लिये अपना संविधान तैयार कर सकें।

इस संविधान-सभा की सृष्टि हो पाई है एक क्रांति के फलस्वरूप। हम अभी इसी क्रांति से हो कर गुजर रहे हैं। सुतरां जो संविधान हम बनाने जा रहे हैं या जो बना चुके हैं वह ऐसा होना चाहिए कि हमारी वर्तमान क्रांतिकालीन स्थितियों के सर्वथा उपयुक्त हो। यदि हमने यह संविधान यह मान कर तैयार किया है

कि वर्तमान सामाजिक शक्तियां ही वहां स्थायी तौर पर बनी रहेंगी और अगर हमने इस संविधान को बनाया है केवल इसलिये कि वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को चालू रखने में सहायक हो तो मुझे शक है कि इस संविधान से देशवासियों का प्रयोजन शायद ही सिद्ध हो सकेगा।

अनेक वर्षों तक संघर्ष करते रहने के बाद हमने जनता में एक शक्ति पैदा की है, उनमें आकांक्षाएं पैदा की हैं और अब हमें इस शक्ति को, उनकी आकांक्षाओं को मान कर संविधान बनाना होगा ताकि संविधान में ये आकांक्षायें प्रतिबिम्बित रहें। अगर ऐसा नहीं होता है तो जनता के लिये इस संविधान की कोई उपयोगिता न रह जायेगी और इसे स्थिरता भी शायद ही प्राप्त हो सके। साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि सत्ता के हस्तान्तरण के बाद से, यहां की विघटनकारी शक्तियों को सर उठाने का प्रोत्साहन मिलने लगा है। सन् 1917 की क्रांति के बाद रूस में ऐसा हुआ था कि वहां दर्जनों छोटी-बड़ी पार्टियां खड़ी हो गई थीं और सभी सत्ता को हथियाना चाहती थीं। उसी तरह यहां भी विभिन्न प्रदेशों में अनेक आर्थिक तथा राजनीतिक दल और गिरोह इसी उद्देश्य से खड़े हो गए हैं। संविधान बनाने में हमें इस तथ्य का भी ख्याल रखना होगा। फिर हम उस पुरानी शासनव्यवस्था को लेकर चल रहे हैं जो हमें यहां विरासत में मिली है। हम संविधान निर्माण का काम बिल्कुल नये सिरे से नहीं शुरू कर रहे हैं। सत्ता के हस्तान्तरण के फलस्वरूप जो शासनव्यवस्था, जो सामाजिक व्यवस्था हमें मिली है वह यद्यपि हमारे लिये बड़ी बोझिल है पर उसे लेकर चलना होगा। इन सभी बातों का हमें ख्याल रखना होगा। इसलिये अपना जो वर्तमान संविधान होगा, वह स्वाभाविक है, कि एक काम चलाऊ संविधान ही होगा और मिश्रित विचार धाराओं के आधार पर निर्मित होगा।

अपने इस संविधान के सम्बन्ध में यह कहा गया है, और मेरी समझ से ठीक ही कहा गया है, कि इसकी अपनी कोई विशेषता नहीं है। रूस के संविधान में यह साफ-साफ कहा गया है कि इस के द्वारा जिस राज्य की स्थापना की गई है उसकी व्यवस्था आधृत होगी समाजवाद पर और सारे सामाजिक प्राधिकार निहित रहेंगे वहां की सोवियट में। अपने संविधान में इस तरह की कोई बात नहीं कहीं गई है और मेरा ख्याल है कि जनता की आकांक्षाओं को हम संविधान में नहीं प्रतिबिम्बित कर पाये हैं और न उस विचारधारा को ही प्रतिबिम्बित कर सके हैं जिसके आधार पर हमने उस क्रांति का संचालन किया है जिसके फलस्वरूप इस संविधान-सभा की उत्पत्ति हो पाई है। संविधान में हमें यह साफ-साफ कह देना चाहिये था कि अपने नवनिर्मित राज्य की व्यवस्था ग्राम पंचायतों के आधार पर विकेन्द्रोन्मुखी व्यवस्था होगी और इसी आधारभूत सिद्धान्त पर हम राज्य की व्यवस्था करेंगे।

फिर भी यह तो कहना ही होगा कि अपने इस संविधान में उन कतिपय महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है जिन्हें हमारी राष्ट्रीय सरकार गत दो साल के अन्दर अपनाने में सफल हो पाई है। उसमें पहली उल्लेखनीय बात यह है कि अस्पृश्यता को समाप्त घोषित कर दिया गया है। अस्पृश्यता भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के लिये सबसे बड़ा कलंक थी। अब, संविधान के अनुसार, अस्पृश्यता

[श्री अरुण चंद्र गुहा]

एक अतीत की बात हो गई है। दूसरी उल्लेखनीय बात इसमें यह है कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-व्यवस्था तथा इस तरह की अन्य विघटनकारी व्यवस्थायें उठा दी गई हैं। इस व्यवस्था की सृष्टि की थी ब्रिटिश हुकूमत ने और इसलिये कि समूचा राष्ट्र प्रादेशिक दृष्टि से तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से टुकड़ों में बंट जाये। संविधान में अब यह व्यवस्था उठा दी गई है। मैं यहां उन सम्प्रदायों के सदस्यों को जो अब तक अल्पसंख्यक नाम से ज्ञात थे, इस बात के लिये धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने समय की जरूरत को समझ कर ठीक-ठीक कदम उठाया, मैं उनको धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने अवसर के अनुकूल आचरण किया। इस सम्बन्ध में खास तौर पर मैं उल्लेख करूंगा सरदार पटेल का तथा श्री एच.सी. मुकर्जी का। इन दोनों सज्जनों ने यदि कृतसंकल्प होकर इसके लिये प्रयास न किया होता तो इस दिशा में हम सफल न हो पाते।

तीसरी महत्वपूर्ण बात हमने यह की है कि देशी राज्यों को समाप्त कर दिया है। यहां सब 600 से कुछ ऊपर रियासतें थीं और ये सब भारत की राजनीतिक काया में विषाक्त कीटाणु के समान थीं। यह सब अब समाप्त कर दी गई हैं और मुख्यतः सरदार पटेल की तत्परता और प्रयास के फलस्वरूप ही यह समाप्त हो पाई हैं।

इसकी चतुर्थ विशेषता यह है कि इसमें राज्य को सर्वथा धर्म निरपेक्ष रखा गया है। समस्त देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य की ज्वाला धधक रही थी पर संविधान निर्माताओं ने इस वैमन्स्य की एक चिनगारी तक को अपने पास नहीं फटकने दिया और दृढ़ होकर वह इसी बात पर अड़े रहे कि जिस राज्य का वह निर्माण करने जा रहे हैं वह सर्वथा एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्रीय राज्य होगा जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुए प्रतिनिधि लिये जायेंगे। अपने इस राज्य में हर नागरिक को चाहे उसका धर्म कुछ भी हो, समान अवसर और समान अधिकार प्राप्त रहेंगे। देश की जो वर्तमान हालत है जिसे कि सन् 1947 के पहले तक हम जानते आये हैं, उसमें इस तरह का संविधान बनाना विशेष रूप से महत्व रखता है और हमें विशेष रूप से इसकी सराहना करनी चाहिये।

भौगोलिक तथा आर्थिक शक्तियों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह राज्य में और समाज में अपना सन्तुलन चाहती है। परन्तु अपने इस संविधान में, मेरा ख्याल यह है कि, इनके सन्तुलन को स्वीकार नहीं किया गया है। मैं जानता हूं कि दुनिया के सभी संघात्मक संविधानों की यही प्रवृत्ति है कि अपने अधिकाराधीन के राज्य क्षेत्र का वह विस्तार करना चाहते हैं। यही बात अमेरिका, रूस और आस्ट्रेलिया के साथ भी है। अभी हाल में ही ब्रिटेन के उदारदलीय राजनीतिज्ञ लार्ड सैमुएल ने यह आशा व्यक्त की थी कि भारत एक वृहत्तर संघ का केन्द्र होगा जिसके अन्तर्गत विशाल प्रदेश होंगे। ऐसी भौगोलिक तथा आर्थिक शक्तियां वर्तमान हैं जो वृहत्तर प्रदेशों को एक राज्य के अन्तर्गत लाने की चेष्टा करेंगी।

इस संविधान के विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाये पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इसमें रखे गये मूल अधिकारों में, नीति के निदेशक सिद्धान्तों में तथा प्रस्तावना में बड़े ऊंचे आदर्शों और भावनाओं को स्थान दिया गया है। काम पाने का अधिकार,

शिक्षा पाने का अधिकार, जीवन निर्वाह के लिये एक निम्नतम पारिश्रमिक पाने का अधिकार—ये सभी अधिकार संविधान में रखे गये हैं। यह मैं जानता हूं कि कई उपबन्धों को रख कर इन अधिकारों का परिसीमन अवश्य कर दिया गया है पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, मेरी समझ से सत्ता के हस्तांतरण के ठीक बाद कुछ ऐसे परिसीमनों का होना आवश्यक भी है। जब तक समाज स्थिर रूप से न सुव्यवस्थित हो जाये, जब तक कि स्थिति न सुदृढ़ हो जाये तब तक इस तरह के प्रतिबन्धों को हमें रखना ही होगा। श्री जान स्टुअर्ट मिल ने भी जो वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के प्रवर्तक माने जाते हैं, यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति के स्वातन्त्रय पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध का रहना आवश्यक है। नागरिकों के प्रति तथा राज्य के प्रति कुछ कर्तव्यों का आभार आरोपित करके व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को परिसीमित करना उन्होंने आवश्यक माना है। ऐसे आभार और प्रतिबन्ध प्रत्येक संविधान में ही रखे गये होंगे। स्थिति के अनुसार, व्यक्ति के स्वातन्त्र्य पर ऐसे प्रतिबन्ध सभी संविधानों में मिलेंगे।

भारत एक विशाल देश है जिसके अंगभूत अनेक प्रदेश हैं और यहां यह बात असम्भव नहीं है कि कोई राजनीतिक दल या शरारती गिरोह बैलट बक्स के जरिये या राजनीतिक जबरदस्ती और छल के सहारे किसी प्रदेश में सत्ता हथिया बैठे। ऐसी स्थिति के लिये राज्य के पास इसका अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह उस प्रदेश को नियंत्रण में रख सके ताकि वह राजनीतिक दल या गिरोह उस प्रादेशिक घटना को, जिस पर कि उसने अधिकार कर रखा है, अपनी शक्ति विस्तार के लिये आधारभूमि न बना सके। इसलिये, प्रादेशिक घटकों पर केन्द्र को अगर व्यापक अधिकार दिये गये हैं तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि राष्ट्रपति में जो शक्तियां निहित की गई हैं वह बहुत ज्यादा हैं। उसे इतनी विस्तृत शक्ति देने का परिणाम बड़ा संकटमय हो सकता है। यह कुछ वैसा ही मालूम होता है जैसा कि जर्मनी के प्रेसिडेंट को व्यापक अधिकार दिये गये थे जिनकी सहायता से सन् 1933 में हिटलर का उत्थान हुआ था।

अपना यह संविधान एक मिश्रित संविधान है जो कई विचार धाराओं के आधार पर बनाया गया है। यह एक संघात्मक संविधान है पर इसका निर्माण शिखर से शुरू किया गया है न कि आधार से जैसा संघात्मक राज्यों के लिये होना चाहिये। इसमें केन्द्र ही संघ के अंगभूत घटकों को शक्तियां सौंपता है न कि सर्वसत्ताधारी होकर अंगभूत घटक अपनी कुछ शक्तियां केन्द्र को सौंपते हैं जैसा कि अमेरिका के विधान में है। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि केन्द्र जो सत्ता सौंप रहा है वह इसमें कृपणता से ही काम लेगा। इस स्थिति में संघबद्ध होने वाले घटकों को जो सम्यक् अधिकार नहीं मिल पाये हैं जो कि संघात्मक राज्य में उनको मिलना चाहिये, वह स्वाभाविक ही है। फिर भी यह मैं जरूर कहूंगा कि वित्त विषयक उपबन्धों को कुछ और उदार बनाया जा सकता था ताकि हर घटक को स्वेच्छानुसार अपने विकास का अवसर मिलता और छोटी मोटी आर्थिक सहायता के लिये उसे हमेशा केन्द्र की ओर न देखना पड़ता।

अपने इस संविधान की उत्पत्ति हुई है एक क्रांतिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप, इसलिये इसमें देश के क्रांतिकारी जनसमूह की आकांक्षाओं को समुचित स्थान दिया जाना चाहिये था। हम एक क्रांति का संचालन कर रहे थे और अभी भी हम उसी

[श्री अरुण चंद्र गुहा]

क्रांति से होकर गुजर रहे हैं और अभी अपनी आखिरी मंजिल पर नहीं पहुंच पाये हैं। स्वातन्त्र्य संग्राम के दिनों में हमारे दिमाग में कुछ क्रांतिकारी आर्थिक विचार भरे गये थे पर उनको संविधान में समुचित स्थान नहीं मिल पाया है। हां, इतना किया गया है कि अनुच्छेद 40 और 43 में गांधी जी की विचारधारा के सम्बन्ध में, दो साधारण उपबंध जरूर रखे गये हैं। ये दोनों उपबंध हैं ग्राम पंचायत और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में। केन्द्र में सत्ता निहित करते हुए भी, समाज की स्थिरता के लिये कुछ शक्ति केन्द्र को देते हुए भी इन सब बातों के बारे में इकाइयों को अधिकार दिया जा सकता था और संविधान में इसके लिये उपबंध रखा जा सकता था। इसलिये अपना यह संविधान क्रांतिजनित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है। फिर भी मैं निराशा का अनुभव नहीं कर रहा हूं। मैं जानता हूं इतिहास विकासशील होता है। किसी देश का संविधान एक प्रयास में स्थिर रूप से नहीं बन पाया है। रूस का वर्तमान संविधान चार प्रयासों के बाद आज इस रूप में आ पाया है। पहली बार उसका निर्माण किया गया सन् 1918 में, फिर 1923 में, 1936 में और 1944 में इसमें हेरफेर किया गया। अमेरिका के संविधान में कई बार संशोधन हुए हैं। अपने संविधान के बारे में मेरा ख्याल यही है कि यह फिलहाल काम चलाने के लिये बनाया गया है और आगे चलकर हमें इसमें बहुत कुछ संशोधन करना पड़ेगा ताकि देश की जनता की आकांक्षाओं का इसमें समुचित स्थान प्राप्त रहे। चीन की ओर से हमें चेतावनी का संकेत मिल रहा है जिसका हमें ध्यान रखना चाहिये। कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है यही काफी नहीं है। जनता तो भविष्य की ओर देखेगी और देखना भी चाहिये। यदि भावी सम्भाव्यताओं को दृष्टि में रखकर हम राज्य का निर्माण नहीं करते हैं तो शायद कांग्रेस दल को भी वही गति प्राप्त होगी जो चीन के कुमिंटांग दल को हुई है। आशा है कांग्रेस दल के नेता इसका ख्याल रखेंगे और भावी संविधान बनाने में सही दृष्टिकोण से काम लेंगे ताकि जनता की आकांक्षाओं को संविधान में समुचित स्थान प्राप्त हो सके। संविधान की दूसरी बात जिस पर बोलने का मित्रों ने मुझ से बार-बार आग्रह किया है, यह है कि इसमें कार्यपालिका को बिना मामला चलाये नागरिकों को निरुद्ध रखने का अधिकार दिया गया है। बिना मामला चलाये मुझे निरोध में रखा जा चुका है और अपने जीवन के प्रायः पच्चीस साल मैंने निरोध में ही बिताये हैं श्रीमान, इस लिये मैं अच्छी तरह जानता हूं निरोध में क्या यातना भुगतनी पड़ती है। और विशेष करके बन्दी के सम्बन्धियों को। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, सत्ता के हस्तान्तरण के ठीक बाद के काल में शासन को ऐसा अधिकार प्राप्त रहना चाहिये और मैं यह सुझाव दे रहा हूं बावजूद इस बात के मैं खुद निरोध की यातना भुगत चुका हूं।

कांग्रेस के अभी जयपुर के अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि राजनीतिक स्वतन्त्रता तो देश ने प्राप्त कर ली है पर उस स्वतन्त्रता का विस्तार हमें सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों तक कर देना चाहिये। किन्तु मैं नहीं समझता हूं कि अपने इस संविधान के द्वारा हम आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों तक इस स्वतन्त्रता को विस्तृत कर सकते हैं। गांधी जी ने हमारे सामने यही आदर्श रखा था कि देशवासियों को आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाना चाहिये और इसी आदर्श की प्राप्ति के लिये हमने स्वातन्त्र्य संग्राम चलाया

था जिसे राष्ट्र भूल नहीं गया है। यह संविधान हमारी आशा के अनुरूप नहीं हो पाया है इससे मैं निराश या उत्साहशून्य नहीं हो बैठा हूं। हमें स्थिति का दृढ़ता से सामना करना होगा और गांधी जी के बताये मार्ग पर चलना होगा। एक पागल हठीले व्यक्ति ने उनके दुर्बल नश्वर शरीर को समाप्त अवश्य कर दिया है। पर उनकी आत्मा चारों ओर व्याप्त है। कवि टैगोर के शब्दों में मैं यही कहूंगा कि वह वृद्ध महापुरुष जिसे क्षुद्रतावश हमने ठुकरा दिया है। जिसकी क्रोधवश हमने हत्या कर दी है, भविष्य में भी हमारा पथप्रदर्शन करेगा और हमारे द्वारा नई दुनिया की, नये मानव समाज की सृष्टि करायेगा। 'बन्दे मातरम्'

***श्री शंकर राव देव** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, दो साल से अधिक काल तक धीरतापूर्वक श्रम करके आज कहीं हम इस स्थिति में पहुंच पाये हैं कि अपने इस संविधान को स्वीकृत करने जा रहे हैं जिसे हमने एक लोकतन्त्रीय राज्य के लिये बनाया है, एक ऐसे राष्ट्र के लिये बनाया है जिसकी जनसंख्या है 35 करोड़। देश का विभाजन हो जाने पर भी आज अपना भारत उससे कहीं बड़ा है जितना कि यह पहले कभी नहीं रहा है और इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं वह लोग जिन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास किया है। यह कहा जाता है कि अब हमने अपना काम प्राय: समाप्त कर दिया है। पर मानव इतिहास में आदमी का काम कभी समाप्त नहीं हुआ है। किसी भी सचेतन पदार्थ की दो ही गतियां होती हैं, या तो वह अपना विकास करेगा या विनष्ट हो जायेगा। वह स्थिर होकर गतिहीन अवस्था में नहीं पड़ा रह सकता है। हमारे राष्ट्र ने शताब्दियों के बाद आज स्वाधीनता प्राप्त की है और इसे अपना विकास करना होगा अपने स्वभाव, रहन-सहन के अनुसार। यदि संविधान को इस विकास के काम में राष्ट्र को सहायता देनी है तो इसे भी अपना विकास करना होगा अर्थात् इसमें विकास के बीजों का होना जरूरी है। हमारा देश एक विशाल देश है जिसमें तरह-तरह के लोग और तरह-तरह की संस्कृतियां हैं। शताब्दियों तक साम्राज्यवादी बन्धन में रहने के बाद आज बन्धन मुक्त होकर वह अपनी शासन व्यवस्था के लिये संविधान बनाने का प्रयास कर रहा है। यह प्रयास एक महत् प्रयास है। इसके लिये अपेक्षित है घनी सहानुभूति ताकि जनता की आकांक्षाओं को संविधान में स्थान प्राप्त रहे, इसके लिए आवश्यकता है उत्कृष्ट कल्पना की जिससे कि इतिहास की धारा को ठीक-ठीक समझा जा सके।

संविधान एक बार बना दिये जाते हैं पर उसके बाद अपना विकास वे स्वयं भी करते रहते हैं। संविधान-निर्माताओं को संविधान विषयक सिद्धांन्तों की पूरी जानकारी होनी चाहिये, उन्हें इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिये कि भिन्न-भिन्न काल में और भिन्न-भिन्न देशों में क्या सांविधान-सिद्धान्त रहे हैं और उन पर अमल किस तरह किया गया है। यदि हम इस वृहत् लेख्य को पढ़ें जो कि चन्द दिनों के अन्दर ही भारत के लोकतंत्रीय संघ का संविधान बनने जा रहा है, तो हम यह देखेंगे कि पूर्वगामी क्रांतियों के प्रवर्त्तकों की विचारधारा को इसमें स्थान दिया गया है। यदि हम इसके वृहदाकार की ओर दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि इसका आकार इतना बड़ा है कि अन्य कोई भी संविधान इसकी बराबरी नहीं कर सकता है। किन्तु इसका इतना वृहत् होना ही इसकी एक बड़ी कमी सिद्ध हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आगे के लिये इसमें कोई बात छोड़ी ही

[श्री शंकर राव देव]

नहीं गई है, और राष्ट्र के लिये संविधानरूपी एक तंग जामा बना दिया गया है जिसके अन्दर रह कर ही राष्ट्र को अपना विकास करना होगा। होना यह चाहिये था कि बहुत सी बातों को रूढ़ि के लिये छोड़ किया जाता ताकि भविष्य की घटनाओं के अनुसार, देशवासियों की आकांक्षाओं के अनुसार, और उनके विकास के अनुसार रूढ़ियां अपने आप विकसित होतीं और संविधान का काम देतीं। इतने वृहदाकार संविधान का कठोर होना अनिवार्य है, इसमें लचीलापन रह नहीं सकता है और इसलिये डर इस बात का है, सम्भावना इस बात की है कि देशवासियों के विकास में यह बाधक न हो जाये। फिर भी यह तो हमें मानना ही होगा कि पूर्वगामी क्रांतियों के प्रवर्तकों की विचारधारा को इसमें स्थान दिया गया है। लोकतंत्र के परीक्षण के फलस्वरूप अब तक जो राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और प्रणालियां निकल पाई हैं उनको स्थान देकर इसे और मजबूत बनाया गया है संविधान की प्रस्तावना में जनता का सर्वसत्ताधारी होना स्वीकार किया गया है और यह रूसो कि "सोशल कन्ट्रैक्ट" की विचारधारा से सर्वथा संगत है। यह मान्टेस्क्यू के शक्ति पार्थक्य सम्बन्धी सिद्धान्त से सर्वथा संगत है। संविधान ने राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाया है और धर्म से इसका कोई लगाव नहीं रखा है और उसकी यह विशेषता यूरोप के पुन:प्रबोध काल की विचारधारा से सर्वथा संगत है। इसमें संघात्मक व्यवस्था अपनाई गई है जो व्यवस्था अमेरिका के स्वाधीन होने पर व्यावहारिक राजनीति के रूप में पहली बार अपनाई गई थी। भारतीय संघ के लिये शक्ति वितरण की जो व्यवस्था संविधान में रखी गई है वह जर्मनी के वाइमार संविधान से ली गई है जो 1918 में बना था। भारतीय लोकतन्त्र के प्रधान अधिशासी को न तो पूर्णत: अमेरिका के प्रेसिडेण्ट की स्थिति दी गई है और न फ्रांस के प्रेसिडेंट की ही स्थिति में उसे रखा गया है। अमेरिका के प्रेसिडेंट की भांति वह शासन के काम में सर्वेसर्वा न होगा और न फ्रांस के प्रेसिडेंट की तरह केवल मंत्रियों को हस्ताक्षर लेना ही उसका काम होगा। फिर भी, जैसा कि जर्मनी के वाइमार संविधान के अधीन हुआ, अपने प्रेसिडेंट को प्रस्तुत संविधान में ऐसी शक्तियां प्राप्त हैं कि वह यहां एक तरह से सर्वेसर्वा बन सकता है। ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ एक लम्बे अरसे तक सम्बद्ध रहने के कारण हमने प्रेसिडेंट की व्यवस्था रखते हुए संसदात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया है। संविधान का भाग 3 जिसमें मूल अधिकार रखे गये हैं तथा भाग 4 जिसमें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त रखे गये हैं—यह दोनों भाग इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं को "कानून का शासन" (Rule of Law) के सिद्धान्त का, जो सिद्धान्त कि ब्रिटिश स्वाधीनता की सुरक्षा के लिये किला का काम करता है, सदा ध्यान रहा है और उन्हें इस बात का सदा ध्यान रहा है कि मार्क्स की विचारधारा का मानव समाज पर, उसके जीवन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा है। निस्सन्देह अपने संविधान में निर्वाचनों को परम महत्व दिया गया है।

अपने संविधान निर्माण के लिये मसौदा समिति नियुक्त करते समय हमें बड़ी फिक्र इस बात की थी कि संविधान शास्त्र के पण्डितों की विज्ञता हमें प्राप्त हो सके, सांविधानिक वकीलों को कानून सम्बन्धी बारीकियों की जो जानकारी है वह हमें मिल सके और यह सभी बातें हमें यथेष्ठ मात्रा में मिली

हैं। डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा समिति के उनके अन्य सभी साथी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और मेरा ख्याल यह है कि हम उनकी तुलना दुनिया के किसी भी देश के संविधान के निर्माताओं से कर सकते हैं। पर संविधान की रचना में हमने राजनीतिक व्यक्तियों की बुद्धिमत्ता से लाभ उठाना नहीं पसन्द किया। राजनीतियों के पास जो सबसे बड़ी निधि होती है वह है उनका अवसर चातुर्य तथा सहजज्ञान। पर इनकी इन खूबियों से हमने कोई सहायता नहीं ली और न अपनी क्रांति की धारा के आधार पर ही अपना संविधान बनाया, क्योंकि अपने संविधान निर्माताओं में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो यह दावा कर सकता है कि 1946 में संविधान-सभा के समवेत होने के पहले यहां जो क्रांतिकारी संग्राम चला था उसकी अग्नि परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ है। सच तो यह है कि यह कहा ही नहीं जा सकता है यह संविधान क्रांतिजनित संविधान है। दुनिया के अन्य संविधाओं को देखिये जिनकी सृष्टि क्रांति के फलस्वरूप हो पाई है। दुनिया के अन्य संविधानों को देखिये जिनकी सृष्टि क्रांति के फलस्वरूप हो पाई है। उन पर क्रांति की छाप पड़ी हुई है और दौड़ता हुआ आदमी भी उसे देखकर यह जान सकता है कि यह ब्रिटेन का, अमेरिका का या रूस का संविधान है। इस संविधान में, जिसके अधीन यहां की शासन व्यवस्था चलाई जायेगी, उन सभी व्यवस्थाओं को स्थान दिया गया है जिनसे व्यक्ति को स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है। इसमें ऐसे हर सिद्धान्त को स्थान दिया गया है जिससे सुख, शान्ति एवं बन्धुत्व भावना में वृद्धि होती है। पर हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि इस संविधान में ऐसी प्रभावी व्यवस्था का उपबन्ध नहीं किया गया है जिसके द्वारा समुन्नति सम्बन्धी किसी सिद्धान्त को, जिसने कि हमारी क्रांति को प्रोत्साहित किया है कार्यान्वित किया जा सकता हो। पर मैं जानता हूं कि इसके लिये दोषी कोई एक व्यक्ति नहीं है। हम यह कहते तो जरूर हैं कि हमने यहां क्रांति की है और महात्मा गांधी द्वारा संभावित अहिंसात्मक क्रांति के सहारे ही हमने आज सत्ता प्राप्त की है पर हमें यह मानना ही होगा कि जिन सिद्धान्तों के आधार पर यह अहिंसात्मक क्रांति चलाई गई थी, वह सिद्धान्त समस्त भारतीय समाज के या यहां के तमाम निवासियों के दिलों तक नहीं घर कर पाये हैं। हम महात्मा गांधी के पीछे चले। जो कुछ उन्होंने आदेश दिया उसका हमने पालन किया और इसलिये किया कि उन्होंने स्वराज्य दिलाने का वचन दे रखा था। पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमने उनका अनुगमन तो किया किन्तु जीवन के सम्बन्ध में उनकी जो विचारधारा थी उसे पूर्णरूपेण कभी हमने नहीं स्वीकार किया। यह क्रांति एक राजनीतिक क्रांति थी जिसने हमको राजनीतिक सत्ता प्रदान की है जिसे इस संविधान में हमने रखने की कोशिश की है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि सामाजिक या आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में गांधी जी की जो विचारधारा थी हम उसके समीप भी नहीं पहुंच पाये हैं और एक बड़ी मंजिल तय करने के बाद कहीं हम उस विचारधारा तक पहुंच सकेंगे। हमारे प्रधान मन्त्री ने अपनी अमेरिका की यात्रा में कितनी बार इस बात को कहा है कि सारी दुनिया आशाभरी दृष्टि से भारत की ओर देख रही है इस बात के लिये कि आज दुनिया के सामने जो संकट है उससे बचने का वह कोई मार्ग बताये। दुख के साथ हमें यह स्वीकार करना होगा कि अपने संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है—जिसे वह नई समझ सकते हों और जिस पर चल कर वह वर्तमान संकट से बचने में समर्थ हो सकते हों। अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, आयरलैंड और जर्मनी आदि विभिन्न देशों के संविधानों से हमने बहुत सी बातें ली हैं पर अपने संविधान में अपनी कोई ऐसी बात नहीं है जिसे ये सारे देश ले सकते हों। अध्यक्ष महोदय, अपने संविधान ने दूसरों से

[श्री शंकर राव देव]

केवल लिया ही लिया है पर दूसरों को देने लायक चीज इसमें कोई नहीं है। पर, जैसा मैंने कहा है, इसके लिये कोई एक आदमी दोषी नहीं है। इसके लिये दोषी हैं हम सब क्योंकि हमने अपने उपदेष्टा का उपदेश पालन ईमानदारी से नहीं किया है। मैं यह नहीं कहूंगा कि हमने जानबूझ कर उसे धोखा दिया है। यह हमारी कमजोरी थी जिसकी वजह से हम उस अहिंसात्मक विचारधारा को स्वीकार नहीं कर सके जो उसने हमें जीवन के बारे में दी थी।

फिर भी इस संविधान में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके लिये हम तथा हमारी भावी सन्ततियां गर्व कर सकती हैं। इसकी पहली खूबी जिसकी ओर हमारी निगाहें जाती हैं वह यह है कि इसमें ऐसे उपबन्ध रखे गये हैं जो राष्ट्र को एक बनाये रहेंगे। उस विषाक्त व्यवस्था को जिसने हमारे ऐक्य को, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक ऐक्य को नष्ट कर रखा था पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को तथा अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था को—हमने समाप्त कर दिया है। मैं जानता हूं कि अनुसूचित जातियों से सम्बन्ध रखने वाले मित्रों ने इस बात के लिये आग्रह किया है कि स्थान-रक्षण के लिये कुछ न कुछ व्यवस्था जरूर रखी जाये। हमने इस व्यवस्था को दस साल के लिये और मान लिया है। किन्तु मुझे विश्वास है कि अगर हम सब अस्पृश्यता रूपी कलंक कालिमा को अगर मिटाने की कोशिश करें न कि संविधान के द्वारा बल्कि अपने हृदयों के द्वारा, यदि हम इस कालिमा को केवल कानून बना कर नहीं बल्कि मन से मिटा दें तो स्थान-रक्षण की व्यवस्था के रूप में जो इसका आखिरी दाग रह गया है वह भी खतम हो जायेगा। इस ऐक्य व्यवस्था की एक और विशेषता है।

हमें इस बात का गर्व है और विशेषकर के उन लोगों को जिन्हें कांग्रेस की सेवा करने का गौरव प्राप्त रहा है, कि स्वतन्त्र भारत के इस संविधान को स्वीकार करके हमने अपने उस वचन को पूरा कर दिया है जो हमने अपने भारतीय रियासतों के भाइयों को दे रखा था। हरिपुरा कांग्रेस के अधिवेशन में हमने यह वचन दिया था कि कांग्रेस न केवल ब्रिटिश भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही है बल्कि वह भारतीय रियासतों की स्वतन्त्रता के लिये भी लड़ रही है। आज हम यह कह सकते हैं कि भारतीय रियासतों को भी उतनी ही स्वतन्त्रता इस संविधान के अधीन प्राप्त रहेगी जितनी कि भारतीय संघ के प्रान्त कहे जाने वाले प्रदेशों को प्राप्त रहेगी। सुतरां बिना किसी प्रतिवाद-भय के मैं यह कह सकता हूं कि हमारा देश पहले कभी इतना एक या वृहत् नहीं रहा है जितना कि वह आज है।

इसकी एक विशेषता और है। हम जोर के साथ यह कह सकते हैं कि इस संविधान ने हमें पूर्ण मात्रा में राजनीतिक स्वातन्त्र्य दे रखा है क्योंकि यह वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर आधृत है। मैं जानता हूं कि कुछ लोग ऐसे हैं जो जनता को दिये गये इस अधिकार के परिणाम से आशंकित हैं। पर मुझे विश्वास है कि उनके इस भय का कारण केवल यह है कि उन्हें जनता पर विश्वास नहीं है। यदि महात्मा गांधी की शिक्षा को हमने हृदयंगम कर लिया है तो जनता पर पूर्ण विश्वास के साथ हम इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। अगर आज देश को विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध किसी बात से प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है वह

है वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त। जहां तक कि किसी संविधान के लिये सम्भव है, वयस्क मताधिकार की व्यवस्था रख कर इसने यह प्रत्याभूति दी है कि अपना देश शान्तिपूर्वक लोकतंत्रीय मार्गों पर चलता हुआ अपनी समुन्नति करेगा।

किन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहां तक कि अपनी क्रांति का सम्बन्ध है, अपने इस संविधान में उसकी बहुत कम बातों को ही स्थान दिया गया है।

हमने प्राय: यह बात कही है कि दुनिया के सामने आज जो संकट है, उसके सामने जो सामाजिक और भौतिक संकट है, उसके निराकरण का उपाय है कि समाज को अहिंसात्मक और विकेन्द्रोन्मुखी बनाया जाये।

मैं जानता हूं कि अपने इस संविधान में शक्तियों को केन्द्र के हाथ में रखने पर ही ज्यादा जोर दिया गया है। किन्तु आज दुनिया में यही प्रवृत्ति सर्वत्र आपको दिखाई देगी। यह प्रवृत्ति इसलिये है कि युद्ध की सम्भावना को दृष्टि में रखकर हम आर्थिक व्यवस्था की योजना बनाते हैं। युद्ध जीतने के लिये यह अनिवार्य है कि सारी शक्ति और उत्पादन व्यवस्था एक जगह केन्द्रित की जाये। सर्वोच्च आदेश उसी एक अधिकारी की ओर से आना चाहिये जिसके हाथ में सारी शक्ति केन्द्रित की गई रहती है। जब तक अहिंसात्मक सिद्धान्तों के आधार पर समाज-निर्माण का निश्चय हम नहीं करते हैं तब तक न तो हम शोषण को रोक सकते हैं और न युद्ध को रोक सकते हैं। जो मित्र संविधान में दोष देखते हैं तथा शक्ति और उत्पादन व्यवस्था को विकेन्द्रित रखना चाहते हैं उनको मैं यह बताना चाहता हूं कि उन्हें अहिंसात्मक समाजिक व्यवस्था के लिये तैयार रहना चाहिये। यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमारे मूल सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखता है। यह एक बुनियादी सवाल है जिसे हमें और शेष दुनिया को हल करना होगा। किन्तु खेदपूर्वक हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहां तक हम लोगों का सम्बन्ध है। हम आज इस स्थिति में नहीं हैं कि हम ऐसे संविधान को अपना सकें जो हमारे लिये और शेष दुनिया के लिये अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था का प्रबन्ध करता हो। ग्राम पंचायत सम्बन्धी अनुच्छेद 44 के सिवाय जो 396 अनुच्छेद और एक वृहत् अनुसूची रखने वाले इस विशाल ग्रंथ में केवल चार पंक्तियों में रखा गया है और ग्रामोद्योग के केवल उल्लेखमात्र के सिवाय, इस संविधान में गांधी विचारधारा की और किसी बात को स्थान नहीं दिया गया है। गांधी विचारधारा के हिसाब से तो अपना यह संविधान पिरामिड के आकार का एक विशाल स्तूप होना चाहिये था जिसमें आधार का काम करतीं लाखों पंचायतें जो जनता की रचनात्मक एवं प्रेरणात्मक शक्ति से सदा सजीव रहतीं। सन् 1832 में हाउस ऑफ कामन्स की सेलेक्ट कमेटी के सामने जो स्मृतिपत्र सर चार्ल्स मेटकाफ ने रखा था उसमें यह अच्छी तरह दिखलाया गया है कि किस तरह इन पंचायतों ने हमारे जीवन और संस्कृति के क्रम को सुचारू रूप से चालू रखा था उस समय में जब कि यहां राजवंश पत्तों की तरह गिर रहे थे और क्रांति पर क्रांति हो रही थी। आज के केन्द्रोन्मुखी समाज में बिजलीघर पर अगर एक बम गिर जाता है तो वह सारे प्रकाश को खत्म कर सकता है और एक भी प्रदीप आपको कहीं अंधेरे में जलता हुआ नहीं दिखाई देगा। किन्तु जहां अनेकों मिट्टी के क्षुद्र प्रदीप जलते हों वहां

[श्री शंकर राव देव]

चकाचौंध पैदा करने वाला प्रकाश भले ही न मिले पर अंधेरा वहां कभी नहीं रहेगा। भारतीय लोकतन्त्र के इस केन्द्रोन्मुखी संविधान से, मुझे शंका इस बात की है कि राष्ट्र की हृद्गति रुक जायेगी और उसके अंगों को लकवा मार जायेगा।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि 15 अगस्त सन् 1947 को हुआ केवल इतना ही था कि सत्ता हस्तांतरित कर दी गई थी। अंग्रेज़ यहां से चले जरूर गये पर अपने लम्बे शासन काल में जिन कई बातों की सृष्टि उन्होंने की थी उसे वह यहां ही छोड़ गये। संविधान तो समाज का दर्पण मात्र है और समाज बिल्कुल वही है जो पहले था। इसलिये अपने संविधान में पूर्व की स्थिति को पूर्व की मान्यताओं को जो स्थान दिया गया है वह स्वाभाविक ही है। और शायद यह बात भी है कि लोग आशा रखते हैं और गलत आशा रखते हैं ऐसी चीज़ पाने की जिसके वह लायक नहीं हैं। लोग उम्मीद इस बात की करते हैं कि अपना यह संविधान, जिसे बनाया है, महान् शहीद महात्मा गांधी के अनुयायियों ने वह उस महान् शहीद की ऊंची भावनाओं से अनुप्राणित होगा। पर हमें विवेक से काम लेना चाहिये और भावुकता के प्रवाह में नहीं बह जाना चाहिये। बुद्धि का यह तकाज़ा है कि हम यथार्थवादी दृष्टिकोण से काम लें। कठोर वास्तविकता से भरी इस दुनिया में परमोत्कृष्ट राज्य व्यवस्था के निर्माण की गुंजाइश नहीं है। वास्तविकता का तकाज़ा यही है समाज को नये सांचे में ढालने के पहले आप उसे स्थिर बना लीजिये। प्रायः ऐसा हुआ है कि उत्तम राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और राज्य व्यवस्था के प्रवर्तक अपने ही सिद्धान्तों के जाल में फंस गये हैं। प्रायः ऐसा हुआ है कि जिसे लोगों ने वास्तविक स्थायी समझा वह केवल एक अल्पकालिक वस्तु सिद्ध हुई। हमें व्यवस्था को स्थिर अवश्य बनाना चाहिये पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये, जिस व्यवस्था को आज हम स्थिर बना रहे हैं वही कालान्तर में प्रबल दैत्य बन कर हमको भयाभिभूत कर सकती है। इतिहास का और मानव कार्यव्यवस्था का यही क्रम रहा है वह सदा गतिशील रहा है और कभी कोई व्यवस्था स्थायी नहीं रही है। मानव इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ है उसने जो भी इमारत जल्दी में तैयार किया है उसे बिन गिराये उसमें आसानी से कोई परिवर्तन वह कर सका हो। यदि हम आज इस संविधान के आधार पर जिस में केन्द्र को शक्ति देने की पूर्ण व्यवस्था की गई है, अपनी राज्य व्यवस्था का निर्माण करते हैं तो फिर हम कभी भी अपनी व्यवस्था में परिवर्तन ही नहीं कर पायेंगे। यह सच है कि आज की स्थिति में हम कोई भी ऐसा संविधान नहीं बना सकते हैं जिसके अधीन हुकूमत कम से कम शासन और हस्तक्षेप करे। इसमें शक नहीं कि धीरे-धीरे लोग इस ऊंचे आदर्श के महत्व को ज़रूर समझने लगेंगे पर जैसा कि मैंने पहले कहा है संविधान न केवल बनाया जाता है बल्कि वह अपने आप भी विकसित होता है। अब अन्त में मुझे इतना ही कहना है कि इस संविधान के द्वारा इस बात की काफी गुंजाइश हमें मिलती है कि संविधान में बिना कोई उथल-पुथल पैदा करने वाला परिवर्तन किये ही धीरे-धीरे महत्वपूर्ण और बुनियादी परिवर्तन ला दें। यदि हम अपने आदर्शों के प्रति सच्चे रहते हैं तो धीरे-धीरे अपनी व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकते हैं। हमारा आदर्श एक अहिंसात्मक और शोषणहीन समाज की स्थापना करना जिसमें सबको समान

समझा जायेगा और आत्मोन्नति का समान अवसर प्राप्त हो सकेगा। इस संविधान के द्वारा हम अपने आदर्श की उपलब्धि कर सकते हैं। इस आदर्श की प्राप्ति कर लेने पर ही हम इस स्थिति में होंगे कि दुनिया के सामने एक तीसरा मार्ग रख सकें।

***सैयद मुहम्मद सादुल्ला** (आसाम: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, कहा जाता है कभी-कभी मौन रहना सर्वोत्तम होता है जब कि बोलना केवल उत्तम होता है। मेरी विनम्र राय में आज का अवसर भी ऐसा ही अवसर हैं जब कि हमारा मौन रहना ही इस महती सभा के लिये शोभा की बात होती है। द्वितीय पठन में हमने उन सभी संशोधनों को पास कर लिया है जो संविधान के मसौदे पर आये हैं। अब तृतीय पठन में संविधान के किसी उपबन्ध की आलोचना करना ऐसा ही है जैसे कि मृत्यु के बाद शव की डॉक्टरी परीक्षा करना है। किन्तु जब मैंने आप से यह सुना कि इस सभा के 125 सदस्य अर्थात् इसके 40 प्रतिशत से भी अधिक सदस्य इस अवसर पर बोलना चाहते हैं तो मुझे अपनी राय बदलनी पड़ी और मैंने यह सोचा कि इन बहुसंख्यक सदस्यों ने जरूर इस बहस की कोई उपयोगिता समझी होगी और इसे कार्रवाई में दर्ज कराने की जरूरत समझी होगी ताकि भविष्य में इससे लोगों को पथप्रदर्शन मिल सके। यही सोच कर मैं यहां बोलने के लिये खड़ा हुआ हूं। फिर पर्शियन में एक कहावत है:-"मर्गे अम्बोह जश्ने दारद" इसका मतलब यह है कि सभी साथियों के साथ, पूरे दल के साथ मरना भी एक खुशी का मौका है। इसलिये मैं भी इस दल में शामिल हो रहा हूं।

मै बोलने के लिये खड़ा रहा हूं दो व्यक्तित्व लेकर। एक तो इस सभा के सदस्य के रूप में और दूसरे मसौदा समिति के सदस्य के रूप में। मेरे लिये यह बात अनिवार्य है। मसौदा समिति के सदस्यों को गत दो साल की अवधि में इस कठिन और शुष्क काम में जो कठोर परिश्रम करना पड़ा है उसकी जिन मित्रों ने यहां प्रशंसा की है उनके प्रति मैं अपनी ओर से तथा मसौदा समिति के अपने साथियों की ओर से नतमस्तक होकर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। अपने उन आलोचकों को भी धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकता हूं जिनकी प्रखरतर बुद्धि ने समिति के सदस्यों की त्रुटियों की आलोचना करना ही ठीक समझा। पर मुझे दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि उन्होंने इस मसले पर गलत दृष्टिकोण से विचार किया है इसे गलत चश्मे से देखा है।

संविधान-रचना के काम में मसौदा समिति बिलकुल स्वतन्त्र नहीं थी श्रीमान। शुरू से ही इसे विभिन्न प्रणालियों और परिस्थितियों के अन्दर रह कर ही काम करना पड़ा है। हमें आदेश यह दिया गया था कि लक्ष्य प्रस्ताव रूपी शिशु के लिये हम परिधान तैयार कर दें। इस लक्ष्य प्रस्ताव को इस गौरवशालिनी सभा ने स्वीकार किया था। हमसे यह कहा गया कि संविधान लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार ही बनना चाहिये और इस प्रस्ताव से सर्वथा संगत होना चाहिए। फिर समिति जो कुछ भी तैयार करती थी उस पर संविधान-सभा को विचार करना पड़ता था और उसे पास भी उसी को करना था। ऐसी हालत में मसौदा समिति का कोई सदस्य भला कैसे यह धृष्टता करने का साहस कर सकता था कि सभा के 308 सदस्यों की राय के खिलाफ अपने सात आदमियों की राय को वह सभा पर लादता।

मनोविज्ञान शास्त्र का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य विकसित होता है अपने आस-पास के वातावरण के अनुसार। अपना संविधान का यह मसौदा,

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

जिसे मसौदा समिति को सभा के समक्ष उपस्थित करने का गौरव प्राप्त है इस सावभौम सिद्धान्त के प्रभाव से बच कैसे सकता था? समिति के सदस्यों को देश में व्याप्त स्थिति को और वातावरण को ध्यान में रखकर ही संविधान बनाना पड़ा है और कई उपबन्धों को जो समिति के सदस्यों को भी लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों से असंगत मालूम पड़ते थे, संविधान में रखना पड़ा है उन शक्तियों के कारण जो मसौदा समिति की शक्ति से भी प्रबल थीं।

मुझे याद है श्रीमान कि मसौदे के कई उपबन्धों में सात बार परिवर्तन किये गये हैं। किसी खण्ड के मसौदे को समिति के सदस्य अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा से अच्छा रूप देते थे। फिर शासन के एक विशेष सचिवालय द्वारा उसकी छानबीन की जाती थी। सचिवालय जो कमी समझता था उसके हिसाब से फिर खण्ड का मसौदा तैयार किया जाता था। इतना होने के बाद फिर सभा का बहुमत प्राप्त दल—अर्थात् कांग्रेस पार्लामेन्टरी पार्टी—इस पर विचार करता था और वही उसे यहां पास करने का आदेश दे सकता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि यह पार्टी भी नये सुझाव रख देती थी जिसे हमें समुचित सांविधानिक रूप देना पड़ता था।

कोई भी मनुष्य-निर्मित संविधान या लेख्य कभी पूर्ण नहीं हो सकता है श्रीमान् और यह पुरानी कहावत है कि वास्तविकता आदर्श तक कभी नहीं पहुंच पाती है। जोकि मैं मसौदा समिति का एक सदस्य हूं पर संविधान में रखे गये कई सिद्धान्तों पर मुझे ही आपत्ति है। संविधान के मसौदे के किसी उपबन्ध की आलोचना करने का मुझे हक नहीं है क्योंकि उसे संविधान में स्थान देने के लिये मैं भी उतना ही दायी हूं जितना कि समिति के शेष सदस्य हैं। फिर भी मैं इस लालच को नहीं रोक सकता हूं कि आपका ध्यान संविधान के केवल दो या तीन उपबन्धों की ओर आकृष्ट करूं जो स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक संविधान के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

खामी की पहली बात इसमें यह है श्रीमान कि केन्द्र को अधिकार देने पर इसमें आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है और राष्ट्रपति को विस्तृत आपात शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। इसमें दूसरी त्रुटि यह है कि नागरिक-स्वातन्त्रय सम्बन्धी उपबन्धों का तथा मूल-अधिकारों को कई ऐसे प्रतिबन्धों से जकड़ दिया गया है जो आपत्तिपूर्ण हैं। इसकी तीसरी खराबी यह है कि प्रान्तों को आर्थिक सहायता देने के लिये कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है जोकि पूर्वगामी शासन के दिनों में हम यही कहा करते थे कि हमारे अंग्रेज़ शासक देश का शासन नहीं करते हैं बल्कि उसका शोषण करते हैं। मैंने अक्सर लोगों को तब यह कहते सुना है कि हमारी सरकार हमारा शासन नहीं करती है बल्कि शोषण करती है। मूल अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्धों का सम-समर्थन किया था हमारे श्रेष्ठ प्राधिकारियों ने और दलील में यह कहा था कि इनका रखना बड़ा आवश्यक है इसलिये कि आज देश में उपद्रव एवं विनाश पैदा करने वाली शक्तियों का प्राबल्य है। उन्होंने यह कहा कि व्यक्ति के स्वातन्त्र्य से अधिक आवश्यक है राष्ट्र का स्वातंत्र्य। यह सच है श्रीमान कि स्वातंत्र्य को हम उच्छृंखल होकर मनमानी नहीं करने दे सकते हैं और शांति और सुरक्षा को तोड़ने वाली शक्तियों से अधिक प्रबल बना कर रखना होगा हमें स्वातंत्र्य विषयक शक्तियों को। इसीलिये, यद्यपि ये प्रतिबन्ध स्वतन्त्र लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं पर मसौदा समिति को मूल अधिकारों पर ये सब प्रतिबंध रखने पड़े हैं।

जहां तक कि केन्द्र में आवश्यकता से अधिक शक्ति निहित रखने की शिकायत का सवाल है, मैं भाग 18 में रखी गई आपात शक्तियों का ही यहां जिक्र करूंगा। अनुच्छेद 352 में उल्लेख है आपात की उद्घोषणा का जिसका अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। आपात की उद्घोषणा तो अनुच्छेद 358 के अधीन भी की जा सकती है उस सूरत में जब कि प्रान्त का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। ऐसी उद्घोषणा की जा सकती है अनुच्छेद 360 के अधीन जब कि राज्य का वित्तीय स्थायित्व संकट में हो और अनुच्छेद 365 के अधीन आपात की उद्घोषणा की जा सकती है जबकि संघ के निदेशों का अनुवर्तन करने में राज्य असफल हुआ हो। आज सवेरे माननीय मित्र काजी करीमुद्दीन ने बहुत ठीक कहा है कि इस व्यवस्था से प्रायः संघर्ष पैदा होगा केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच और बजाय इसके कि प्रान्त स्वाधीनता और स्वातंत्र्य के वातावरण में रहें उनके कामों में केन्द्र तथा राष्ट्रपति का हस्तक्षेप होता रहेगा जिसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि देशवासियों के सुख, शांति और सन्तोष पर कुप्रभाव पड़ेगा।

निर्धन और ज़रूरतमन्द प्रान्तों की आर्थिक सहायता के लिये कोई उपबन्ध संविधान में नहीं है और इस प्रसंग में मुझे अपने प्रांत अर्थात् आसाम प्रान्त का प्रश्न उठाना पड़ रहा है। माननीय मित्रों को याद होगा कि इसी साल के शुरू में मैंने यहां आप लोगों से सत्तर मिनट लिया था यह बताने में कि आसाम की स्थिति यह है कि उसकी आर्थिक व्यवस्था टूट जायेगी अगर केन्द्र से समय पर सहायता नहीं मिलती है और उस हालत में अपने संघ की एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व शायद ही रह जाये। यह प्रान्त अपने विशाल देश के पूर्वी एवं उत्तरवर्ती सीमा पर प्रहरी के रूप में अवस्थित है जहां साम्यवाद की काली और भयावनी घटायें घिर कर इकट्ठी हो रही हैं जिससे समस्त सभ्य संसार दुखी और भयभीत हो गया है। किसी ने यह ठीक ही कहा है किसी संघ की शक्ति का अनुमान उसके अंगभूत घटकों की शक्ति से किया जाता है और इसमें शक नहीं कि संविधान में हमने केन्द्र को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न भी किया है। जंजीर की ताकत उसकी कमज़ोर से कमज़ोर से लड़ी की ताकत पर मुनस्सर करती है। आसाम की शासन व्यवस्था को हमें एक सभ्य शासन व्यवस्था के स्तर पर ही रखना होगा। वहां के निवासियों को हमें सुखी और सन्तुष्ट रखना हागा नहीं तो संकट इस बात का है कि यह प्रान्त साम्यवाद का क्रीड़ास्थल बन जायेगा।

आसाम के विधान मण्डल में और इस सभा में भी मैं यह बता चुका हूं कि साढ़े पांच करोड़ की कुल आय में ढाई करोड़ का घाटा कोई मामूली बात नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाय। आसाम के मंत्रिमंडल ने बड़ी दृढ़ता के साथ मेरे इस ख्याल का और अनुमान का विरोध किया था। किन्तु मुझे खुशी है कि आसाम के ही एक मंत्री ने परसों यहां अपनी वक्तृता द्वारा मेरे इस कथन की पुष्टि की है। श्री निकल्स राय ने अपने भाषण में यह कहा है कि चालू वर्ष में आसाम की आय में करीब दो करोड़ की कमी होगी। पहले एक मौके पर यहां आसाम के मुख्य मंत्री को भी यह चेतावनी देनी पड़ी थी कि दो या तीन साल के अन्दर यह कभी तीन चार करोड़ तक पहुंच जायेगी। इस सभा से तथा इसके द्वारा केन्द्रीय प्राधिकारियों से मैं साग्रह इस बात का अनुरोध करूंगा कि आसाम की दुखद स्थिति पर वह दृष्टिपात करें और उदारतापूर्वक समय पर उसे

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

सहायता पहुंचायें। अपने कोष भण्डार से केन्द्र को कोई रकम देने की जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि जैसा कि दो या तीन महीना पहले मैं यह चुका हूं, केन्द्रीय शासन को आसाम से दस करोड़ की आय होती है। केन्द्रीय राजस्व में आसाम से कई मदों के जरिये दस करोड़ रुपये पहुंचते हैं। इसलिये अगर इस रकम से एक चौथाई या तिहाई केन्द्र आसाम को देता है तो इसे दान या विशेष सहायता नहीं कहा जा सकता है। केन्द्र तो आसाम की ही रकम आसाम को दे रहा है।

आसाम प्रान्त का एक जिला है जो खासी और जयन्तिया के पहाड़ी इलाकों से मिलकर बना है श्रीमान। इसी जिले में आसाम की राजधानी अवस्थित है। अधिकांश सदस्यों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि शिलांग से पाकिस्तान की सीमा केवल पचास मील की दूरी पर है। खासी पहाड़ियों के दक्खिनी ढाल के वासिन्दों को खाद्य सामग्री और आजीविका मिलती थी सिलहट जिले से जो अब पूर्वी पाकिस्तान में चला गया है। भारत और पाकिस्तान के बीच अब, चुंगी प्रतिबन्ध के कारण, व्यापार सामग्री का स्वतन्त्र यातायात बन्द हो गया है। माननीय मित्र श्री निकल्स राय ने इस स्थिति के लिये पाकिस्तान को ठीक ही दोषी ठहराया है। मैं केवल यह बताना चाहता हूं श्रीमान कि इस प्रदेश को तथा जिले के अन्य कतिपय प्रदेशों को अगर यथेष्ट मात्रा में खाद्य सामग्री नहीं उपलब्ध होती है तो अन्ततोगत्वा सम्भव है वहां के निवासी पाकिस्तान को ही अपना रक्षक समझ कर उसकी मुंहजोई करने लग जायेंगे। सबसे दयनीय बात तो यह है कि जहां तक गल्ले का सम्बन्ध है आसाम एक बचत वाला प्रान्त है फिर भी आज वह कमी वाला प्रदेश बन गया है। सन् 1943-46 तक के तीन वर्ष के अपने प्रधान मंत्रित्व काल में ही मैंने देखा है कि वहां 2 लाख टन चावल जरूरत से ऊपर पैदा हुआ था और इस अतिरिक्त गल्ले को केन्द्रीय सरकार को दिया गया था जैसा कि केन्द्रीय सरकार के कागजात से भी ज्ञात होगा। औसतन 50 लाख मन चावल सालाना आसाम ने केन्द्र को इस अरसे में दिया है पर आज यह एक कमी वाला प्रान्त बन गया है और आपको आश्चर्य होगा यह सुनकर कि शिलांग शहर में, जहां चावल राशन में मिलता है, मेरे अपने घर में, प्रान्त के भूतपूर्व प्रधानमंत्री तथा विरोधी पक्ष के नेता के घर में लोगों को तीन दिन बिना चावल के रहना पड़ा है।

खासी के पहाड़ी क्षेत्रों को षष्ठ अनुसूची में रख दिया गया है और इसके लिये सर्वाधिक कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हैं श्री निकल्स राय। किन्तु इसमें एक संविधानिक असंगति है। यह सच है इसके प्रतिकार का मार्ग इस संविधान-सभा को नहीं निकालना है पर चेतावनी के लिये सभा को मैं यह बता देना चाहता हूं कि खासी के छोटे पहाड़ी जिले में छोटे-छोटे 25 देशी राज्य थे जिनमें अधिकांश को दिल्ली स्थित भारतीय शासन से संधि करने का अधिकार प्राप्त था। सन् 1947 में उनसे भारतीय डोमिनियन में शामिल होने को कहा गया। करार-पत्र के साथ प्रवेश-पत्र इनको दिया गया था जिन्हें इन रियासतों के प्रधानों ने स्वीकार किया और उन पर अपने हस्ताक्षर किये जिसे भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया। इस प्रदेश को यद्यपि पष्ठ अनुसूची में शामिल कर लिया गया है पर अब तक खासी-राज्य-संघ की संविधान-सभा और आसाम सरकार अथवा भारत सरकार के बीच कोई समझौता या करार नहीं हो पाया है 26 जनवरी सन् 1950 के बाद

इन प्रदेशों की या यहां निवासियों की क्या स्थिति रहेगी यह मालूम नहीं है। खासी राज्य-संघ के प्रेसिडेन्ट के नेतृत्व में एक डेपुटेशन इस महीने के शुरू में अपनी शिकायतों को राज्य-सचिवालय तथा मसौदा-समिति के सामने रखने के लिये दिल्ली आया था। मसौदा समिति ने उनसे मुलाकात की थी और उन्होंने दो साधारण बातों के लिये अनुरोध किया था। इनकी लोकतंत्रीय व्यवस्था औरों से कहीं उत्कृष्ट है। ये अपने प्रधानों को वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित करते हैं। प्रधानों को जनता हटा भी सकती है। वह चाहते यह हैं कि उनकी यह व्यवस्था बनी रहने दी जाय। दूसरी व्यवस्था जो इस प्रदेश वासियों के दिलों में घर कर गई है वह यह है कि इनके प्रधान वंश परम्परा के आधार पर नहीं रखे जाते हैं। उनका भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता है। भूमि तो जनता की ही होती है। भूस्वामित्व की इस प्राचीन और पवित्र व्यवस्था को धारा 3 के द्वारा यह व्यवस्था समाप्त कर दी जा सकती है। एक सामान्य उपबन्ध वह इस बार के लिये चाहते हैं कि जिला-स्वायत्त-शासी परिषदों के द्वारा इन अधिकारों में हेरफेर न किया जा सके।

कुछ लोग कह सकते हैं कि इन स्वायत्तशासी परिषदों में तो उनके ही प्रतिनिधि होंगे। पर इन परिषदों की कुल सदस्य संख्या सीमित रखी गई है। 24 तक और इसके केवल तीन-चौथाई सदस्य निर्वाचित रहेंगे और शेष एक चौथाई किसी तरह से लिए जायेंगे यह बात हवा में छोड़ दी गई है। मालूम नहीं इन स्थानों की पूर्ति किस व्यवस्था के अनुसार की जायेगी—मनोनयन के द्वारा की जायेगी या परोक्ष निर्वाचन की किसी अन्य पद्धति द्वारा और अगर मनोनयन द्वारा की जायेगी तो कौन उनको मनोनीत करेगा। मैं जानता हूं इन लोगों ने अपनी शिकायत सामने रखने में देर कर दी है और तृतीय पठन के समय इस बात के लिये कुछ नहीं किया जा सकता है पर संविधान-सभा के माननीय सदस्यों से जो 26 जनवरी सन् 1950 के बाद भी इस निकाय के सदस्य बने रहेंगे, मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह कृपा कर इस बात का ध्यान रखें कि खासी प्रदेशवासियों के साथ जो अन्याय हुआ है उसका शीघ्र ही प्रतिकार हो जाय क्योंकि इस प्रदेश के निवासियों के सन्तोष और शान्ति से देश की सीमाओं की सुरक्षा बहुत बढ़ जायगी।

दो शताब्दी के दासत्व और पराधीनता के बाद आज हमने अपना यह संविधान तैयार किया है श्रीमान। स्वतन्त्र संविधान की कल्पना ही मेरे हृदय को आल्हादित कर देती है, इसके ख्याल से ही हमारा हृदय हर्ष से उछलने लगता है। फिर भी अपने हृदय पर हाथ रखकर हम यह नहीं कह सकते हैं कि इस वर्तमान संविधान से हमें वैसी खुशी हो रही है जैसी कि होनी चाहिये यह संविधान जो स्वीकृत होकर दो महीने के अन्दर ही प्रभावी हो जायेगा, एक समझौते का संविधान है। कई सदस्यों ने यहां यह कहा है कि यह संविधान केवल संक्रांति काल के लिये है। मैं यही उम्मीद करता हूं कि अपने भावी विधि-निर्माता यह कोशिश करेंगे कि जहां तक हो सके इसे पूर्ण बनाया जाये। हलुआ अच्छा बना है या बुरा इसका पता तो खाने पर चलता है। इस लिये अभी कोई नहीं कह सकता है कि इसका लोग गुणगान करेंगे या निन्दा। इसे कार्यान्वित करने पर ही इस बात का पता चलेगा कि यह अमल में लाया जा सकता है या नहीं, इससे देशवासियों की आवश्यकताओं

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

की ओर जमाने की जरूरतों की पूर्ति हो सकती है या नहीं और यह देशवासियों की अपनी जीवन व्यवस्था के लिये अनुकूल है या नहीं पर एक बात जरूर है और वह यह कि अगर हम इसे कार्यान्वित करते हैं उसी उच्च भावना से जो प्रस्तावना में रखी गई है तो हम यह कह सकते हैं कि यह संविधान ऐसा है जिस को आदर्श संविधान बनाया जा सकता है।

अन्त में श्रीमान मैं जगन्नियंता परमात्मा से आशीर्वाद पाने की प्रार्थना करूंगा और संस्कृत की इन दो पंक्तियों को पढ़ूंगा:

असतो मा सदगमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय

अरेबिक में भी कहा गया है:–

अस् साइंयो मिन्नी अल् इत्मने ओ मिनुल् अल्लाह

मनुष्य का काम है प्रयास करना फल तो ईश्वर के हाथ में है। हमारा कर्तव्य यही होना चाहिये कि हम विनम्रतापूर्वक प्रयास करें इस संविधान को कार्यान्वित करने का जिसे ऐसे लोगों ने बनाया है जिन्होंने इसको बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। यदि इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं और उसी उदात्त भावना से जो कि प्रस्तावना में रखी गई है अर्थात् यदि हम सबके साथ न्याय करने की कोशिश करते हैं और बन्धुत्व एवं समानता की भावना से इस पर अमल करते हैं तो इस शुष्क संविधान को भी हम स्वर्गसुखद संविधान बना सकते हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रान्त और बरार जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं। संविधान के सम्बन्ध में कुछ भी कहने के लिये मैं आपको धन्यवाद देना चाहूंगा श्रीमान् इस बात के लिये कि आपने गत तीन वर्षों तक प्रशंसनीय योग्यता के साथ यहां अपना काम किया है। आपने सदस्यों के बीच कभी कोई भेद भाव नहीं बरता और सभी सदस्यों को बहस मुबाहिसे में हिस्सा लेने का उदारतापूर्वक मौका दिया। अध्यक्ष के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतित्व यह रहा है श्रीमान कि यहां उठाये गये औचित्य प्रश्नों पर आपने अच्छे से अच्छे निर्णय दिये हैं।

इसके बाद मैं धन्यवाद दूंगा मसौदा समिति को उसके संविधान-निर्माण सम्बन्धी काम के लिये। माननीय मित्र पंडित एच.वी. कामत को भी मैं धन्यवाद देता हूं कि संविधान निर्माण सम्बन्धी काम में उन्होंने बहुत बड़ी दिलचस्पी ली है। आप 'G.G.' के परम भक्त हैं। मुझे उन पर गर्व है क्योंकि वह हमारे प्रान्त मध्यप्रांत से ही आये हैं। मैं उन्हें पंडित कहता हूं क्यों वह इस अर्थ में पंडित हैं कि:–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्
आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पंडित:।

पंडित कामत में ये गुण हैं और जब तक वह कुमार हैं ये गुण उनमें बने रहेंगे। हां विवाहित होने के बाद उनमें कोई परिवर्तन आ जायेगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता हूं।

देश की अनुसूचित जातियां इस संविधान का जिस उत्साह के साथ स्वागत करेंगी उस उत्साह के साथ और वर्ग इसका स्वागत शायद ही कर सकें और अनुसूचित जातियों के उत्साहित होने का कारण यह है कि इसमें अस्पृश्यता को समाप्त करने का उपबन्ध रखा गया है जिससे हरिजन लोग अब यहां मनुष्य की तरह रह सकेंगे। अनुसूचित जाति का एक सदस्य होने के नाते मैं हृदय से इस संविधान का स्वागत करता हूं श्रीमान। आप भी इसे जानते हैं श्रीमान कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज के लिये एक बड़ा अभिशाप है। इसके कारण देश के सात करोड़ निवासियों के साथ सवर्ण हिन्दू भाईयों द्वारा वैसा ही व्यवहार किया गया है जैसा कि कुत्ता और बिल्ली के साथ किया जाता है। गत कई शताब्दियों से उनको अछूत बनाकर समाज से सर्वथा पृथक रखा गया है। जब देश के स्वातंत्र्य के आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा तो पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, सरदार बल्लभ भाई पटेल, पंडित जवाहर लाल नेहरू, बाबू सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, राजाजी एवं अन्य नेताओं ने यह देखा कि हिन्दू समाज से अस्पृश्यता को हटाये बिना देश को आजादी नहीं मिल सकती है। 15 अगस्त सन् 1947 को जब भारत आजाद हुआ उस समय, मुझे याद है, किसी मौके पर सरदार पटेल ने, जो मेरी राय में अपने इस स्वातंत्र्य के सब से बड़े रक्षक हैं और जो सभा की ओर से तथा देश की ओर से पूर्ण कृतज्ञता पाने के अधिकारी इस महत्वपूर्ण काम के लिये कि उन्होंने देश की सभी रियासतों को संघ में शामिल करा दिया, यह कहा था कि बहुत परिश्रम से प्राप्त की गई भारत की स्वतंत्रता तब तक सुरक्षित नहीं रखी जा सकती है जब तक कि अस्पृश्यता यहां बनी रहती है। मुझे यह भी याद है श्रीमान कि अपने प्रधानमंत्री और अग्रणी नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी किसी महत्वपूर्ण मौके पर यह कहा था कि विदेशों के लोग हमारी निन्दा केवल इसीलिये करते हैं कि हम अस्पृश्यता को मानते हैं। इस कुत्सित व्यवस्था को हटाने के लिये हमारे सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने मिलकर खूब परिश्रम के साथ काम किये हैं पर इसे मिटाने में उन्हें सफलता न मिल सकी। इसी तरह खुद अनुसूचित जातियों के सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने, नेताओं ने–सर्वश्री राव बहादुर श्रीनिवासन्, वीर रत्न देवी दास जी, जतससन्त चोखा मेला, भक्त रविदास, वी.एन. भाटकर, किशन फागू बंसोदे, जी.ए. गवई, महात्मा काली चरण नन्दागौली, उमाजी गजाबा खांडेकार, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, मुनिस्वामी पिल्ले, इ. कानन, बी.सी. मण्डल, नरायन धन जी भोंसले, श्रीमती बेनूभाई भाटकर, शम्भाजी गोडघाटे, आर.बी. महे, अन्तूजी भगत, दीवान बहादुर एम.सी. राजा, इस श्रुद्र वक्ता ने तथा देश के अन्य कई लोगों ने अस्पृश्यता को हटाने के लिये एक दीर्घकाल तक परिश्रम के साथ काम किया है पर यह कुव्यवस्था अब तक नहीं हट पाई है। हमें केवल इसी हद तक सफलता मिली है कि हम हरिजनों में ये यह अनुभूति पैदा कर सके हैं कि वह भी मनुष्य हैं। देश में एक लम्बे काल तक श्री मनु की विधि के अनुसार शासन चलता रहा है। आपको मालूम है श्रीमान कि मनु

[श्री एच.जे. खांडेकर]

के कानून का देश पर क्या प्रभाव पड़ा है। इससे यहां वर्णों की सृष्टि हुई, जातियों में उप-जातियां पैदा हो गईं और एक जाति वाला दूसरी जाति के व्यक्ति का मुंह नहीं देख सकता था। मनु के कानून के अनुसार अस्पृश्यों को गांव या नगर के बाहर और वह भी पूर्व की ओर बस्ती बनानी पड़ती थी। आज भी अगर आप गांवों या शहरों की बस्तियों को ध्यान से देखें तो आपको अस्पृश्यों की बस्ती पूर्व की ओर ही मिलेगी। हम अस्पृश्यों को जो उस जमाने में शूद्र कहे जाते थे: इतना भी अधिकार नहीं प्राप्त था कि अपने बच्चों का नाम हम अपनी इच्छानुसार रख सकें। मनुस्मृति में एक श्लोक है:-

मंगलम् ब्राहमणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसांयुक्तम्, शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।

यदि हम शूद्रों को यानी आज के हरिजनों को अपने बच्चों का नामकरण करना होता था तो हम अपनी इच्छानुसार जवाहरलाल या ब्रह्मदत्त आदि नाम नहीं रख सकते थे, हम केवल नन्द, जनक जैसे जुगुप्सित नाम ही रख सकते थे। यह था मनु का कानून। आज हम स्वतंत्र भारत का संविधान बना रहे हैं, मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा की छत्रछाया में। यदि अनुमति हो श्रीमान, तो मैं इस संविधान को माहर-संविधान कहूंगा क्योंकि डॉ. अम्बेडकर माहर जाति के आदमी हैं। 26 जनवरी सन् 1950 को मनु-संविधान के स्थान पर यह माहर-संविधान देश में लागू हो जायेगा और मैं यही उम्मीद करता हूं कि उस संविधान का प्रभाव मनु-संविधान की तरह न होगा। मनु-संविधान के अधीन देश में सुख सम्पन्नता कभी नहीं रही पर इस माहर-संविधान के अधीन, मुझे यही उम्मीद है कि देश वस्तुत: स्वर्ग बन जायेगा। गौतम बुद्ध, रामानुज, कबीर, सन्त तुकाराम, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, परमहंस, महात्मा जोती राव फुल्ले, विट्ठल राम जी सिंधे, ठक्कर बापा तथा प्रात: स्मर्णीय महात्मा गांधी जैसे सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक सुधारकों ने अस्पृश्यता की कुव्यवस्था को मिटाने के लिये अथक प्रयास किया पर इस पिशाच प्रथा को हटाना उन्होंने कठिन पाया। इसके लिये उन्होंने देश में काफी आन्दोलन किया पर उन्हें सफलता न मिल पाई। अब संविधान में हम ने अनुच्छेद 17 को रखा है इस लिये कि यह कुव्यवस्था समाप्त हो जाये और मुझे पक्का विश्वास है कि अस्पृश्यता अवश्य उठ जायेगी। किन्तु विभिन्न प्रान्तों में भी अस्पृश्यता को उठाने के लिये कई बिल पास हुए हैं जैसे मन्दिर प्रवेश बिल, अस्पृश्यता निवारण बिल आदि। पर इन कानूनों का प्रभाव वहां क्या हुआ है। इन कानूनों द्वारा अस्पृश्यता उठाने में हमें रत्ती भर भी सफलता नहीं मिली है। इस लिये संविधान में अस्पृश्यता उठाने का उपबन्ध रख देने से मैं नहीं समझता कि अस्पृश्यता यहां से उठ जायेगी। अस्पृश्यता की कुत्सित व्यवस्था को समाप्त करने के लिये यहां के करोड़ों निवासियों के दिलों में परिवर्तन लाना होगा और जब तक इनके हृदयों में परिवर्तन नहीं होता है मैं नहीं समझता कि यह कलंक कालिमा कभी दूर हो सकती है। यह बात तो हिन्दू समाज को देखनी है कि अब किसी रूप में वह अस्पृश्यता को न माने। माननीय मित्र

श्री रंगा ने अभी उस दिन अपने भाषण में कहा है कि वह आशावादी व्यक्ति हैं और उन्हें इसका पक्का विश्वास है कि दस वर्ष के अन्दर न केवल अस्पृश्यता ही उठ जायेगी बल्कि 'अनुसूचित जाति' की संज्ञा भी बिल्कुल उठ जायेगी। वह आशावादी हो सकते हैं पर मैं आशावादी नहीं हूं। अछूत होने के कारण अछूतों की कठिनाइयों को मैं अच्छी तरह जानता हूं। मैं खुद अछूत हूं। *(बाधा)* अस्पृश्यता क्या है इसका मुझे व्यावहारिक अनुभव है और इसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि अगर हिन्दू समुदाय सच्चाई से पेश नहीं आता है तो यह कुत्सित प्रथा दस साल के अन्दर तो नहीं दूर हो सकती है। इसके दूर होने में कितने ही वर्ष बीत जायेंगे क्योंकि हिन्दू समाज के हृदय में अभी परिवर्तन नहीं आया है। अपनी इस बात की पुष्टि के लिये मैं कई घटनायें आपके सामने रख सकता हूं पर मेरे पास इस के लिये समय नहीं है। इसलिये विस्तार में न जाकर माननीय मित्र श्री रंगा से मैं इतना ही कहूंगा कि केवल सभा में वक्तृता देने से अस्पृश्यता नहीं उठेगी। इसके लिये उन्हें देश के कोने-कोने में जाकर हिन्दू समाज को उपदेश देना होगा और समाज के हृदय में ऐसा परिवर्तन करना होगा कि वह उनकी विचारधारा को अपना ले। ऐसा होने पर ही अस्पृश्यता के उठने की सम्भावना की जा सकती है। श्री रंगा ने उस दिन अपने भाषण में यह बात भी कही थी कि उनके लिये यह सौभाग्य की बात है कि आंध्र का एक पृथक प्रान्त बनने जा रहा है पर हम महाराष्ट्र वालों को अभी यह सौभाग्य नहीं मिला है कि हमारा भी अपना एक पृथक प्रान्त बने।

अस्पृश्यता को उठाने के लिये श्रीमान केन्द्रीय सरकार को, प्रान्तीय सरकारों को, कांग्रेस तथा राजनीतिक संगठनों को भी यथाशक्ति प्रयास करना होगा। इस अस्पृश्यता के कारण दुनियां के लोग हमें घृणा से देखते रहे हैं और अभी भी घृणा से ही देखते हैं। मैं इन देशों से यह कहूंगा कि हम अभी जो संविधान स्वीकार कर रहे हैं उसको देखकर वह हमारे सम्बन्ध में कोई फैसला करें। कोई भी बुद्धिमान और विवेकशील हरिजन सदा के लिये अछूत बना रहना नहीं पसन्द करेगा। हम सब यही चाहते हैं कि शीघ्रातिशीघ्र हम हिन्दू समाज में घुल मिलकर एक हो जायें क्योंकि भारत की संतान होने के कारण हम भी यही चाहते हैं कि हमारे देश का सर दुनियां में ऊंचा रहे।

अब मैं उस अनुच्छेद पर आता हूं जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षण का उपबन्ध किया गया है। मुझे खुशी है कि विधान मण्डलों में इन दोनों वर्णों के लिये जगह सुरक्षित रखी गई हैं इन की जन संख्या के आधार पर। पर यह व्यवस्था केवल दस साल के लिये रखी गई है। इस अनुच्छेद पर शुरू में ही कई संशोधन आये थे। अल्पसंख्यक-समिति में तथा इस संविधान-सभा में भी इस पर संशोधन आये थे पर दुर्भाग्यवश वह स्वीकार नहीं किये गये। मेरा ख्याल यह है कि दस साल की अवधि इस बात के लिये काफी नहीं है कि हरिजन लोग सवर्ण हिन्दुओं के स्तर पर आ सकें। मुझे पक्का विश्वास है कि दस साल बाद जब कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रह जायेगी, कोई हरिजन अगर सिकी सवर्ण हिन्दू के विरुद्ध चुनाव लड़ता है तो कोई भी सवर्ण हिन्दू उसे अपना वोट न देगा और यह भी हो सकता है कि उसकी जमानत की रकम भी जब्त हो जाये। हमारे देश में यही स्थिति है। इसलिये, अनूसूचित जातियों के उत्थान के लिये दस वर्ष की अवधि काफी नहीं है।

[श्री एच.जे. खांडेकर]

दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों की उन मांगों के बारे में जो सरकारी नौकरियों से सम्बन्ध रखती हैं। अभी कुछ मिनट पहले मैंने यहां अपने एक मित्र का भाषण सुना है जो सिख समुदाय के सदस्य हैं। मुझे उनकी यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ है कि सिखों में भी अनुसूचित जातियां हैं। मुझे याद है कि जब डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को छोड़ने का विचार व्यक्त किया था तो कई सिख दोस्तों ने, सिख नेताओं ने डॉ. अम्बेडकर के पास आकर कई बार यह कहा था, और कई मौकों पर सार्वजनिक रूप से भी यह कहा था कि उनके समाज में अस्पृश्यता की कुप्रथा नहीं है। इन लोगों ने डॉ. अम्बेडकर को यह आमंत्रण दिया था कि वह मय अपने दल के साथ सिख धर्म को अपना लें। किन्तु आज यहां अपने एक सिख बन्धु को यह कहते सुन रहा हूं कि सिख समाज में भी अस्पृश्य हैं। इसी आधार पर पूर्वी पंजाब में अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों को सिख मित्रों ने लिया है। अस्पृश्यता के नाम पर ही अगर जगहों में से हिस्सा बटाना चाहते थे तो उन्हें जनरल सीटों में से जगह लेनी चाहिये थी। किन्तु उन्होंने जगहें ले ली हैं उनके हिस्से से जो अछूतों की तरह ही पिछड़े हुए हैं और जिन्हें यह लोग रामदासी कहते हैं और जो लोग इन की राय में देश में सबसे ज्यादा पिछड़े हुए हैं। अस्तु मुझे खुशी है कि अपने समुदाय के लिये हमने विधान मण्डलों में जगहें सुरक्षित करा ली हैं और हमारी इन जगहों में से हिस्सा बटा लिया है सिख समुदाय ने इस बहाने के आधार पर कि उनमें भी कुछ अछूत हैं। उनकी यह चाल कोई साधारण राजनीतिक चाल नहीं है। कुछ सिख जातियों को उन्होंने अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल करा लिया है इस उद्देश्य से कि पूर्वी पंजाब में हरिजनों की रक्षित जगहों के लिये चुनाव लड़ें और इस तरह वास्तविक हरिजनों के अधिकारों पर भी अतिक्रमण करें। सरकारी नौकरियों के बारे में हमारे यह सिख मित्र शिकायत कर रहे थे। नौकरियों के सम्बन्ध में भी वह यही चाहते हैं कि सिखों की अनुसूचित जातियों को हरिजनों की जगहें दी जायें। सभा को मैं बताऊं कि नौकरियों में हमें उतनी प्रतिशत जगहें नहीं दी गई हैं जितने प्रतिशत देने की बात भारत सरकार ने कह रखी है। ऊपर की नौकरियों में $12^{1}/_{2}$ प्रतिशत तथा नीचे की नौकरियों में $16^{1}/_{3}$ प्रतिशत जगहें हमें देने की बात भारत सरकार ने मंजूर की है पर उतनी जगहें हमें नहीं मिली हैं। पर यह जरूर हुआ है कि कटौती के लिये भारत सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा सरकार के हरिजन कर्मचारियों को नोटिस दी गई हैं। सैकड़ों हरिजन इसी महीने में या आगामी महीने अपनी नौकरियों से अलग कर दिये जायेंगे। मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार का गृह-सचिवालय इस बारे में हरिजनों को छूट देगा और छंटनी के लिये उनको नहीं निकालेगा। अनुच्छेद 335 में यह कहा गया है कि नौकरियों के बारे में हमारी जो मांगें होंगी उन पर ध्यान दिया जायेगा पर भारत सरकार के कार्यालयों में हो यह रहा है कि इसी महीने में जब कि संविधान पास होने जा रहा है कितने ही हरिजन कर्मचारियों को छंटनी के लिये हटाया जा रहा है। इसलिये मैं यह कहूंगा कि इस खंड के रख देने से अनुसूचित जातियों का प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा जब तक भारत सरकार तथा विभिन्न प्रांतीय सरकारें इस खण्ड पर अमल करने की कोशिश न करें और हरिजनों को निश्चित अनुपात के हिसाब से नौकरियों में ले नहीं। मैं ज़्यादा नहीं चाहता हूं उनकी जनसंख्या के हिसाब से उन्हें जितनी जगहें मिलती हों उतनी उन्हें दीजिये।

दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं संघ-लोकसेवा-आयोग तथा प्रान्तीय लोकसेवा-आयोगों के बारे में। दुर्भाग्य की बात यह है कि इन आयोगों में हरिजन सदस्य रखने के लिये संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है। इन समुदायों के अर्थात हरिजनों और अनुसूचित जातियों के भाग्य का निर्णय करना इन आयोगों के हाथ में होगा और इन आयोगों में कोई हरिजन सदस्य होगा नहीं। भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को इन आयोगों को यह अनुदेश देना चाहिये कि यह अनुसूचित जातियों के दावों पर ध्यान दें। इन आयोगों के बारे में तथा हरिजनों के प्रति इनके कर्तव्य के सम्बन्ध में मुझे बस इतना ही कहना है।

गत कई वर्षों से हम बात की मांग करते आ रहे हैं कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में तथा प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों में अनुसूचित जातियों के लिये जगहें रक्षित रहनी चाहिये। संविधान में इसके लिये भी कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। हां इस सम्बन्ध में एक रूढ़ि अवश्य चालू हो गई है। आशा है कि केन्द्र में जो दल अधिकारारूढ़ होने वाला होगा तथा प्रान्तों में जो दल अधिकारारूढ़ होगा, उनके नेता इस बात का ख्याल रखें तथा और उदारता के साथ मंत्रिमण्डलों में हरिजनों को स्थान देंगे। आप यह कह सकते हैं कि इन को मंत्रिमण्डलों में जगहें मिली हुई हैं पर यह जगहें पर्याप्त नहीं हैं। बस मैं एक या दो ही बात और कहूंगा। आज देश में एक भी हरिजन नहीं है जिसे गवर्नर या राजदूत अथवा डिप्टी मिनिस्टर का पद दिया गया हो। यह बात मैं केवल शासन तथा कांग्रेस के हाई कमान की जानकारी के लिये कह रहा हूं और आशा करता हूं कि वे इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

इस संविधान में सारे अधिकार राष्ट्रपति को दिये गये हैं। मुझे उम्मीद है कि राष्ट्रपति उन अधिकारों का सर्वोत्तम उपयोग करेंगे जो उन्हें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सम्बन्ध में प्राप्त हैं। एक बात मैं आप की निगाह में जरूर लाना चाहता हूं श्रीमान् इस सभा के कुल 308 सदस्य हैं जिसमें से 73 सदस्य देशी राज्यों से आये हैं। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है। कि इस 73 में केवल एक हरिजन सदस्य है। संविधान सभा का अध्यक्ष होने की हैसियत से, आशा है, आप कुछ ही महीनों के अन्दर आकस्मिक रिक्तयों को भरने जा रहे हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि आप इस बात को ध्यान में रखेंगे और राज्यों से तथा प्रान्तों से और अधिक हरिजन सदस्य इस सभा के लिये लेंगे। आज सभा में हमारी संख्या केवल 27 है जब कि जनसंख्या के हिसाब से हमारी संख्या यहां 60 होनी चाहिये थी। आप को तथा कांग्रेस के हाई कमान को यह देखना चाहिये श्रीमान कि इस सभा में हमें संख्या के हिसाब से जगहें प्राप्त हों। मैं यह भी सुझाव देना चाहूंगा कि कई हरिजन सदस्य जो उनके लिये बोलते हैं उन्हें संविधान सभा (विधायनी) में बने रहने की और प्रान्तीय विधान मण्डलों से स्तीफा देने की अनुमति मिलनी चाहिये।

इस संविधान के अधीन हमें वाक-स्वातंत्र्य, संचार स्वातंत्र्य आदि का अधिकार मिला हुआ है। पर देश के एक करोड़ अभागे नागरिकों को संचार का स्वातंत्र्य नहीं है। यहां के क्रिमिनल ट्राइब्स को संचार की स्वतंत्रता अभी नहीं प्राप्त है। इस संविधान में इनके बारे में कुछ नहीं कहा गया है। क्या शासन 'क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट' को हटा कर उन लोगों को स्वतंत्रता प्रदान करेगा?

***श्री एच.वी. कामतः** क्या तथा-कथित क्रिमिनल ट्राइब्स के लिये आप कह रहे हैं?

***श्री एच.जे. खांडेकरः** हां तथा कथित क्रिमनल ट्राइब्स के लिये ही मैं कह रहा हूं। अनुच्छेद 19 में वाक स्वातंत्र्य आदि कई अधिकारों को रक्षित रखा गया है। कई प्रतिबन्ध मूल उपबंधों के साथ। आशा है कि प्रतिद्वंदी राजनीतिक पाटिर्यों और श्रमिक-नेताओं के विरुद्ध अस्त्र के रूप में इस अनुच्छेद का उपयोग नहीं किया जायेगा। मुझे खुशी है यह देखकर कि संविधान ने बेगार और बलात श्रम लेने की कुत्सित व्यवस्था को उठा दिया है और अछूतों पर बेगार का जो अभिशाप था उसे संविधान ने अब समाप्त कर दिया है।

निजी तौर पर मैं विक्रय-कर के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि यह एक अपरोक्षकर है जिसका भार गरीब जनता पर ही पड़ता है। पर इस बारे में सभा ने एक अनुच्छेद पास कर दिया है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं केवल इतना ही कहूंगा कि इससे मध्य प्रांत और बिहार को नुकसान उठाना पड़ जायेगा। वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं। मुझे उम्मीद है कि इस व्यवस्था से, किसान और मजदूर राज्य सम्बन्धी स्वप्न पूरा हो जायेगा। इस देश के अधिकांश मतदाता किसान और मजदूर ही होंगे। ये लोग अपनी पसन्द के व्यक्तियों को चुनकर अपनी सरकार बना सकेंगे। गत निर्वाचन के समय अपने निर्वाचन सम्बन्धी घोषणापत्र में कांग्रेस ने यह कहा था कि वह इस देश में किसान-मजदूर राज्य स्थापित करेगी। व्यस्क मताधिकार के अनुच्छेद को रखकर कांग्रेस ने अपना वचन पूरा कर दिया है।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी देश की राज्य भाषा बना दी गई है। किन्तु ऐसी हिन्दी राज्य भाषा नहीं होनी चाहिये जैसी कि आज के कार्यक्रम-पत्र में मैंने पढ़ी है। यहां 'पारित' शब्द रखा गया है जिसे मैं समझ ही नहीं सका। यदि हिन्दी में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया जायेगा तो यह देश के लिये दुर्भाग्य की ही बात होगी। हमें ऐसी हिन्दी रखनी चाहिये जिसे देश का हर आदमी समझ सकता हो। *(खूब, खूब)*

दूसरी बात यह है कि हमें अपना एक राष्ट्रीय गान अवश्य रखना चाहिये। मैं सभा का बहुत कृतज्ञ हूं कि उसने 'मध्यप्रांत और बरार' की जगह मेरे प्रान्त का नाम 'मध्य प्रदेश' स्वीकार किया है।

***श्री आर.के. सिधवाः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि कार्यक्रम में प्रयुक्त कौन से शब्द की चर्चा आपने अभी की है?

***श्री एच.जे. खांडेकरः** मैंने 'पारित' शब्द का जिक्र किया है जो सभा के कार्यालय द्वारा वितरित आज के कार्यक्रम की हिन्दी वाली प्रति में प्रयुक्त हुआ है। कार्यक्रम में यह कहा गया है:- "इस परिषद् द्वारा निश्चित किये गये रूप में विधान पारित किया जाये।" मैं हिन्दी अच्छी तरह जानता हूं पर 'पारित' का क्या मतलब होता है यह मैं नहीं समझ सका। हां, मैं 'मध्य प्रदेश' की बात कह रहा था। इसके लिये संशोधन माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत ने तथा मैंने रखा

था जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया है। मैं मध्य प्रान्त के मुख्य मंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल को और उनके मंत्रिमण्डल को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस नाम की सिफारिश की और इस सभा को धन्यवाद देता हूं कि उसने इसे स्वीकार किया।

(इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई)

***श्री एच.जे. खांडेकरः** एक समुदाय की तरफ से मैं यहां बोल रहा हूं श्रीमान।

***अध्यक्षः** और वक्ता भी तो हैं जो बोल चुके हैं और बोलेंगे।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** एक शब्द मैं कहूंगा। माननीय मित्र दामोदर स्वरूप के बारे में। इन्होंने फरमाया है कि अगर समाजवादी दल अधिकार में आता है तो उसे इस संविधान में जरूर परिवर्तन और संशोधन करना होगा। उनका ध्यान मैं अनुच्छेद 37 और 47 की ओर आकृष्ट करूंगा और यह पूछना चाहूंगा कि अपने प्रोग्राम और विचार के मुताबिक इस से ज़्यादा और वह क्या चाहते हैं? यह मैं जानता हूं यह दोनों अनुच्छेद निदेशक सिद्धान्तों में रखे गये हैं। यह शासन के लिये परामर्श मूलक ही हैं आदेश मूलक नहीं पर मुझे विश्वास है कि शासन इनको जरूर पूरा करेगा। माननीय मित्र सेठ दामोदर स्वरूप से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस देश में अगर समाजवाद की किसी को जरूरत है तो अनुसूचित जातियों को ही इसकी जरूरत है न कि पूंजीपतियों, जमींदारों, मालगुजारों और मिल मालिकों को। किन्तु आज मैं देखता यह हूं कि पूंजीपतियों के सुपुत्र ही आज समाजवादी पार्टी का आन्दोलन चला रहे हैं और उसमें यही लोग कर्मी हैं। मैं नहीं जानता हूं कि इसके पीछे उद्देश्य क्या है।

डॉ. अम्बेडर को मैं अपने भाषण के प्रारम्भ में ही धन्यवाद दे चुका हूं। पृथक निर्वाचन बनाम संयुक्त निर्वाचन के प्रश्न पर मुझ में और डॉ. अम्बेडकर में आज 18 वर्षों से मतभेद रहा है। इस 18 साल की अवधि में हम परस्पर आमने सामने आने के लिये भी तैयार नहीं थे। किन्तु मुझे खुशी है कि संविधान बनाने में इन्होंने बड़ा कठिन परिश्रम किया है और इतना ही नहीं बल्कि पृथक निर्वाचन के विचार का परित्याग कर दिया है और संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था के लिये उन्होंने 'ऐडवाइजरी सब-कमिटी' में वोट दिया था। इसलिए अब उनसे मेरा कोई मत भेद नहीं रह गया है। इस तीन साल के अन्दर आपने संविधान बनाने में देश की महती सेवा की है इसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं। अब मैं उन्हें एक ही सलाह दूंगा और वह यह कि वह कांग्रेस में शामिल हो जायें और अपने भाइयों की भलाई करें। मुझे विश्वास है कि अगर वह कांग्रेस में आ जाते हैं तो इससे देश की अनुसूचित जातियों को और लाभ पहुंचेगा। मैं अपने अन्य बन्धु माननीय जगजीवन राम को, जो कि कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य हैं और भारत सरकार के भी एक मंत्री हैं एक सुझाव दे देना चाहूंगा। इन तीन वर्षों की अवधि में जब कि डॉ. अम्बेडकर देश की महती सेवा कर रहे थे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम देश को महती क्षति पहुंचा रहे थे।

***माननीय सदस्यगण:** प्रश्न।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** अनुसूचित जातियों को चमार और गैर चमार में विभक्त करके उन्होंने हरिजनों को बड़ी क्षति पहुंचाई है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): इस वक्तव्य का हम विरोध करते हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** मैं तो केवल एक सुझाव रख रहा हूं। आशा है इस तरह वह इस समुदाय को विभक्त नहीं करेंगे।

***अध्यक्ष:** यह सुझाव नहीं, यह तो दोषारोप है। अच्छा होगा कि आप अपना भाषण अब बन्द कर दें। तीस मिनट से ज़्यादा समय आपने ले लिया।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह जानना चाहता हूं श्रीमान 'जी.जी.' से उनका क्या मतलब था।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** G.G. से मेरा मतलब है God & Goddess से इन शब्दों के साथ, सभा से इस संविधान को स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहिब** (मद्रास: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, आपके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं इस बात के लिये कि आपने सभा का कार्यसंचालन इस खूबी के साथ किया है कि किसी को भी कभी शिकायत का मौका नहीं मिला। डॉ. अम्बेडकर को भी मैं धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस उत्कृष्ट योग्यता के साथ संविधान निर्माण का काम किया है। विश्वास कीजिये श्रीमान कि यह कृतज्ञता प्रकाश और धन्यवाद प्रदान मैं केवल रस्मी तौर पर शिष्टाचार के लिये नहीं कर रहा हूं। हम लोगों में से जो उस बहुमत प्राप्त दल के नहीं थे जो कि मसौदा समिति के विचारों में परिवर्तन करके या उसका समर्थन करके सभा से बाहर पहले से ही संविधान विषयक प्रश्नों का निर्णय कर लिया करते थे—और इस तरह एक तरह से यह पार्टी ही इसका अन्तिम निर्णायक रही है—वह लोग तो सर्वथा असहाय स्थिति में पड़ जाते अगर आप हमारा बचाव न करते और हमें अपनी बात कहने का मौका न देते। आपकी इस सच्चाई और न्यायप्रियता के लिये श्रीमान मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूं। डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट अभिव्यक्ति अनूठी थी और अनुपम स्पष्टता के साथ उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। संविधान सम्बन्धी एवं वित्तीय विषयों के बारे में उनका जो वाणिज्य है वह अनुपम है और पूर्ण हैं। किन्तु आपकी तरह उन्हें यहां स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। इसलिये आज हम लोगों के समक्ष रखे गये संविधान में जो त्रुटियां हैं, खराबियां हैं वह उस स्थिति के कारण संविधान में अनिवार्य रूप से आ गई हैं जिसमें कि डॉ. अम्बेडकर को रखा गया था। अत: इनके लिये उनको जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

अब आइये, हम उन कारणों पर विचार करें जिन के लिये कि संविधान की रचना इस रूप में की गई है जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है।

मेरी राय में इसके तीन कारण हैं। पहला कारण यह है कि हममें से अधिकांश लोगों का जिसमें कि मसौदा के सदस्य भी शामिल हैं, ब्रिटिश साम्राज्यवादी वातावरण में ही लालन पालन हुआ है, शिक्षा दीक्षा मिली है, और ब्रिटिश साम्राज्य अपने अन्तिम समय में बड़ा ही दमनकारी हो गया था खास करके उस समय जब कि स्वातंत्र्य-आन्दोलन चल पड़ा था और राज्य की सुरक्षा और स्थिरता के नाम पर उसने नागरिकों को नागरिक-अधिकारों से और वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित कर रखा था। यह सच है कि जिन लोगों को दमन की तकलीफें झेलनी पड़ीं उन्होंने दमन व्यवस्था का घोर विरोध किया था पर स्वतंत्रता के बाद जब उन्हें संविधान-निर्माण का काम करना पड़ा तो ये लोग उस मानसिक स्थिति से अपने को मुक्त न कर सके जो राज्य की सुरक्षा और स्थिरता सम्बन्धी ख्यालों के कारण पैदा हुई थी जिनका उपदेश यहां ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने दिया था।

इसका दूसरा कारण है कि श्रीमान। जब यह संविधान मसौदा समिति में था और उसके बाद जब यह सभा के कांग्रेसी सदस्यों के सामने आया था और अन्त में जब यह इस सभा के समक्ष रखा गया था उस समय देश में शान्ति नहीं थीं तीसरा कारण यह है कि ब्रिटिश हुकुमत का सारा उत्तराधिकार मिला यहां एक दल को और वही दल सारे अधिकारों का उपयोग करता आ रहा है। मेरा विश्वास यही है कि इन्हीं तीन बातों के कारण संविधान इस रूप में निर्मित हुआ है जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है। मेरी राय में तो यह संविधान सर्वथा नैराश्यपूर्ण है, दकियानूसी है और प्रतिगामी है अपने इस मन्तव्य की पुष्टि के लिये और इसका खुलासा करने के लिये, आपके जरिये इस महत्वशालिनी सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करूंगा श्रीमान उस अन्तर की ओर जो इस सभा द्वारा सन् 1947 में किये गये निर्णयों में तथा विचार विमर्श की स्थिति के बाद अब किये गये निर्णयों में प्रत्यक्ष है।

सन् 1947 में दमन की याद हमारे दिमाग में बिलकुल ताजा थी। उस समय देश में बहुत अधिक अशान्ति नहीं दिखाई दे रही थी और जो राजनीतिक दल आज अधिकारारूढ़ है उसे अकेले ही उस समय सत्ता नहीं प्राप्त थी। यही कारण था कि जब नमूने का संविधान हमारे सामने रखा गया था उस समय माननीय सरदार पटेल ने यह प्रस्ताव रखा था कि संविधान से उन उपबंधों को हटा देना चाहिये जिनके द्वारा नागरिक-स्वातंत्र्य में कमी आती हो। यह प्रस्ताव भी उस समय माननीय पटेल ने ही रखा था कि जहां तक वैयक्तिक स्वातंत्र्यों का सम्बन्ध है उनके सम्बन्ध में निर्णय होना चाहिये एक न्यायिक समिति द्वारा। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, उस समय इनको स्वायत्त शासन देने की बात ही सोची गई थी। पर चूंकि सारी सत्ता एक राजनीतिक दल में निहित थी और दमन की याद धीरे-धीरे धुंधली पड़ती जा रही थी और देश में चारों ओर उपद्रवी और अशान्ति पैदा करने वाले लोग सर उठा रहे थे, इसलिये संविधान का सारा रूप ही बदल दिया गया है और बदल करके इसे खराब कर दिया गया। नागरिक स्वातंत्र्य में अब कमी कर दी गई है; वैयक्तिक स्वातंत्र्य पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये हैं और केन्द्र के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई है। कुछ लोगों का कहना यह है कि देश में जो स्थिति वर्तमान है उसे देखते हुए, नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करना ठीक है।

मेरा कहना यह है श्रीमान, कि इस सम्बन्ध में हमें विचार करना होगा दो बातों पर। पहली बात यह है कि अपना यह संविधान हम बना रहे हैं हमेशा

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

के लिये या केवल अपनी वर्तमान कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये। दूसरी विचारणीय बात यह है। हमने अपना संविधान बनाया है संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए यानी ऐसी शासन व्यवस्था के लिये जिसका संचालन करेगा केवल एक राजनीतिक दल। अब हमें सोचना यह है कि इस संविधान में व्यक्ति के लिये परित्राण मूलक उपबन्ध क्या रखे गये हैं। इन दो प्रश्नों पर हमें विचार करना होगा। जहां तक कि पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा विनम्र कथन यह है कि आपात-शक्ति सम्बन्धी भाग 18 में इसके लिये पर्याप्त उपबन्ध रखा गया है। और फिर मेरे ख्याल से अनुच्छेद 358 में भी, जिसके द्वारा कि राज्यों को अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के निलम्बन की शक्ति दी गई है, इसके लिये पर्याप्त व्यवस्था है। इससे अधिक आप क्या चाहते हैं? फिर वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करके और मूल अधिकारों का न्यूनन करके संविधान को कुरूप क्यों बना रहे हैं? ऐसा करने का कोई समुचित कारण नहीं है। आपात-शक्तियों का उपबन्ध आपने रखा ही है। आपात की घोषणा होने पर केन्द्र को, राष्ट्रपति को, राज्य को इन अधिकारों को छीनने का अधिकार प्राप्त है। इसलिये मेरा कहना यह है कि मूलाधिकारों में या नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करने का कोई समुचित कारण आपके पास नहीं है।

दूसरी बात यह है कि इस संविधान में, जो संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिये होगा, नागरिकों को क्या परिमाण दिये गये हैं? ऐसे संविधान में दो बातों का होना निहायत जरूरी है। पहली बात इसमें यह होनी चहिये कि मूलाधिकार वास्तविक होने चाहिये और उन्हें विधान मण्डल के क्षेत्राधिकार के अधीन न रखना चाहिये। संसदात्मक लोकतंत्र में विधान मण्डल में एक दल का ही प्राधान्य होगा जो शासनारूढ़ रहेगा। इसलिये इन मूलाधिकारों को हमें विधान मण्डल के क्षेत्राधिकारों के बाहर रखना चाहिये। संसदात्मक लोकतंत्रीय संविधान के लिये पहली जरूरी बात यही है। दूसरी जरूरी बात उसके लिये यह होती है कि आपात ग्रस्त नागरिक न्यायालय द्वारा इन अधिकारों को क्रियान्वित करा सकता हो। अच्छे संविधान की यही दो कसौटियां हैं। अब आइये हम यह देखें कि अपना यह संविधान इन दोनों बातों को पूरा करता है या नहीं। मेरा ख्याल यह है कि अपना संविधान इन जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता है। बावजूद डॉ. अम्बेडकर की सद्भावना के और सर्वश्री पंडित ठाकुरदास भार्गव, जसपत राय कपूर एवं अन्य मित्रों के प्रबल प्रयास करने पर भी हम सभा को या मसौदा समिति को इस बात पर राजी नहीं कर पाये कि मूलाधिकारों को वह विधान मण्डल के क्षेत्राधिकार से बाहर रखे। यह एक अनिवार्य बात है कि विधान मण्डल में एक दल का ही प्राधान्य रहेगा। अनुच्छेद 22 में इतना तथाकथित सुधार हो जाने के बाद आज भी राज्यों के विधान मण्डल किसी व्यक्ति को बिना मामला चलाये तीन माह तक नजरबन्द रख सकते हैं और संसद तो उसे उस अवधि तक नजरबन्द रख सकती है जिस अवधि तक भी रखने का वह निर्णय करे। जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, यह है स्थिति।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है संविधान के सारे उपबन्धों में न्यायपालिका के प्रति एक सन्देह-भावना का या विश्वासभाव का आभास मिलता है। यह बड़े ही

दुर्भाग्य की बात है श्रीमान। लोकतंत्रीय संविधान में, जिसमें संसदात्मक प्रणाली के आधार पर शासन व्यवस्था चलाने की बात सोची गई हो, ध्यान देने की सबसे जरूरी बात यह होती है कि उसमें रखे गये मूलाधिकार वास्तविक हों और अच्छी तरह से परिभाषित हों तथा न्यायालयों को इस का अधिकार प्राप्त हो कि राज्य की सुरक्षा को बिना आघात पहुंचाये वह मूलाधिकारों को क्रियान्वित करा सकते हों। यही एक मात्र उपाय है जिसके द्वारा संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था में नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सकता है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है, श्रीमान तो मुझे डर है कि शासन सर्वथा निरंकुश और स्वेच्छाचारी बन जायेगा और अपनी डिक्टेटरी कायम कर देगा।

संविधान में, सारे अधिकार केन्द्र में ही निहित रखने का प्रयास किया गया है और यह बात भी संविधान की इसी प्रवृत्ति की पुष्टि करती है कि यहां शासन व्यवस्था एकतंत्रीय हो और सारी सत्ता उसी के हाथ में हो। जो कुछ भी थोड़ा बहुत शासन स्वातंत्र्य प्रान्तों को पहले प्राप्त था वह भी अब आपात के नाम पर छीन लिया गया है। जिस तरह ब्रिटिश अमलदारी में, राज्य की सुरक्षा और स्थिरता के नाम पर नागरिकों को स्वातंत्र्य से वंचित किया गया था उसी तरह इस संविधान में भी हम यह देखते हैं कि कतिपय उपबंधों द्वारा आपात के नाम पर नागरिकों को स्वातंत्र्य से वंचित किया गया है, राज्यों को अधिकारों से वंचित किया गया है और केन्द्र को ही मजबूत बनाया गया है।

अगर अनुमति हो श्रीमान तो आपात-उपबन्ध वाले अध्याय 18 में रखे गये पहले अनुच्छेद की ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। उसमें युद्ध, बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति की स्थिति के लिये आवश्यक उपबन्ध रखा गया है। आपात-स्थिति के लिये यह समूचा अध्याय आपके पास है। आपात की स्थिति आने पर आप इस अध्याय के उपबन्धों को उपयोग में ला सकते हैं। मूलाधिकारों का अगर आप न्यूनन करते हैं तो इसमें वस्तुतः संकट है। विवेकशून्य कार्यपालिका, अनुच्छेद 22 और 19 का लाभ उठाकर नागरिकों को भास दे सकती है। संविधान में रखे गये उपबन्धों से इसी स्थिति के आने की सम्भावना है। जिन लोगों पर संविधान निर्माण की जिम्मेदारी है उन्होंने कुछ न कुछ कारणों से यह सोच रखा है कि साधारण कालीन स्थिति की अपेक्षा आपात-स्थिति को अधिक महत्वपूर्ण बताकर अपने मंतव्य या दृष्टिकोण पर यहां जोर दिया जाय। कहा गया है कि लोकतंत्र का मूल्य चुका सकते हैं हम सदा सचेत रहकर। आशा है कि जनता इसके लिये पर्याप्त सचेत रहेगी कि संविधान को वह बदल सके और जरूरत होने पर उस सरकार को बदल सके जो संविधान के इन उपबन्धों से लाभ उठाकर मनमानी हुकुमत चला रही हो। मुझे विश्वास है कि अपना देश जागरूकता के इसी स्तर पर पहुंचा रहेगा और लोकतंत्रीय सिद्धान्तों और वैयक्तिक अधिकारों को वह प्रतिष्ठित रखेगा एवं ऐसे शासन को यहां प्रतिष्ठित करेगा जो व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता देता हो।

***श्री एस.एम. घोष** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले मैं कृतज्ञता ज्ञापन करूंगा महात्मा अरविन्द के प्रति जिन्होंने भारतीय-स्वातंत्र्य संग्राम की हमें प्रेरणा दी। आज हम अपनी उस यात्रा की अन्तिम मंजिल पर पहुंच गये

[श्री एस.एम. घोष]

हैं। जिसे प्रारम्भ किया था सन् 1857 में भारतीय सिपाहियों ने और जिसमें आगे चल कर असंख्य शहीद और बड़े-बड़े नेता सम्मिलित हुए और संग्राम की इस कठिन यात्रा को पूरा कराते हुए आज हमें अपने गन्तव्य तक, अपने लक्ष्य तक पहुंचा दिया और देश को स्वतंत्र करा दिया। मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा अगर इस अवसर पर अपने महान नेताओं और शहीदों का—तिलक, लाला लाजपतराय, पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित मदन मोहन मालवीय, चित्तरंजन दास, जे.एन. सेन गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस, श्रीनिवास आयंगर, सत्यमूर्ति, डॉ. अनसारी प्रभृति नेताओं का तथा कन्हैयालाल, सत्येन बोस, जतीन मुकर्जी, जतीन दास, सूर्यसेन तथा अनेक अन्य शहीदों का—नामोल्लेख यहां न करूं जिन्होंने इस संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी है। वर्तमान पीढ़ी में इस स्वातंत्र्य-संग्राम को चलाया है हमने भारतीय राष्ट्र के जनक महात्मा गांधी के नेतृत्व में, पंडित जी के, सरदारजी के, एवं आपके नेतृत्व में श्रीमान। इन सभी विभूतियों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

यह ख्याल करने की लोगों की प्रवृत्ति सी हो गई है कि जहां तक माननीय समुन्नति का सम्बन्ध है रूस ने आखिरी बात कह दी है और वह क्रांति की आखिरी मंजिल तक पहुंच गया है। किन्तु मैं जोर के साथ यह कहना चाहता हूं कि भारत को और भारतवासियों को उस मंजिल से कहीं आगे जाना है। मुझे विश्वास है कि इस महान काम को पूरा करने की शक्ति और साहस भारतवासियों में है, इस महान काम को पूरा करने के लिये जो गुण अपेक्षित हैं वह भी उनमें हैं।

यहां सभा में कुछ चर्चा मैंने मनु के सम्बन्ध में सुनी है पर मैं समझता हूं कि मनु से अभिप्रेत क्या है, इस का वास्तविक अर्थ क्या है इसकी ठीक जानकारी न होने से ही यह बात कही गई है। डॉ. अम्बेडकर के सम्बन्ध में बोलते हुए एक सदस्य ने यह कहा कि वह मनु नहीं हैं बल्कि महार जाति के हैं और हमें संविधान बना कर दे रहे हैं। मनु ब्राह्मण जाति के थे या महार जाति के इसे कोई नहीं जानता। भारतीयों की दृष्टि में मानवता के कल्याण के लिये जो आदर्श विधि हो सकती है उसी के प्रतीक हैं मनु। इस दृष्टि से, डॉ. अम्बेडकर को जो आधुनिक मनु कहा गया है वह ठीक ही है। यह बात नहीं है कि विधि निर्माण का काम जिसके जिम्मे होता है यह स्वयं कोई विधि बनाता है। वह तो केवल इतना ही करता है ऋषि दृष्टि से, चाहे कोई व्यक्ति महार जाति का हो या ब्राह्मण जाति का या अन्य किसी भी जाति का, अगर वह अन्तर्ज्ञान रखता है और विधि को संहिता बद्ध कर सकता है न केवल अपने सम्प्रदाय के हितार्थ और अपने सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से बल्कि समस्त मानवता के हितार्थ तो उस व्यक्ति को हम मनु कह सकते हैं।

अब मैं संविधान की ओर आता हूं। मैं जानता हूं कि हम में से बहुत लोग इससे सन्तुष्ट नहीं हैं क्योंकि इसमें भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ बांध कर रखा गया है। यह सच है; पर माननीय मित्रों को मैं यह बताना चाहता हूं कि देश के भावी भाग्य का फैसला संविधान उतना नहीं करेगा जितना कि जनता की मरजी।

इस लिपिबद्ध संविधान में कुछ में कुछ भी क्यों न रखा गया हो, हमें देखना केवल यह है कि इसमें ऐसी कोई बात तो नहीं है जो हमारे ऐसे प्रयास में बाधक होती हो जो हम अपनी रुचि के अनुसार भारतीय जनता की भलाई के लिये करना चाहते हों। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है मुझे पक्का विश्वास है कि इस संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जो हमें, जनता की भलाई के लिये किये जाने वाले किसी काम में बाधक हो सकती हो। और अगर कोई ऐसी बात है भी, तो मुझे विश्वास है कि बहुत कुछ निर्भर करेगा उन रूढ़ियों पर जिनका विकास हम करेंगे।

पंचायत सम्बन्धी उपबन्धों पर मैं विशेष रूप से जोर दूंगा श्रीमान। मैं जानता हूं कि हम जिस उपबन्ध को रखना चाहते थे वह यह नहीं है। फिर भी मुझे विश्वास है कि अगर हम तनमन से कोशिश करते हुए इस संविधान पर अमल करते हैं जिसमें पंचायतों की बुनियाद रखी गई है तो, ईश्वर चाहेगा तो हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री पी.टी. चक्को** (ट्रावनकोर और कोचीन का संयुक्त राज्य): इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है श्रीमान। मैं यह जरूर बता देना चाहता हूं कि इस संविधान पर मैं केवल उसी दृष्टिकोण से विचार कर सकता हूं जिससे कि देशी राज्य का प्रतिनिधि इस पर विचार कर सकता है। मैं यह देखता हूं कि संविधान में सारी सत्ता केन्द्र के हाथ दी गई है और उसे एक इर्ष्यालु, दुष्ट और स्वेच्छाचारिणी सास की स्थिति में रखा गया है जो कम उम्र में ही विधवा हो गई हो और नव दम्पति की गतिविधि पर तरह-तरह के नियंत्रण रखती हो और उनकी स्वतंत्रता में तरह-तरह की बाधायें उपस्थित करती हो। केन्द्र को मजबूत रखने के खिलाफ मैं नहीं हूं। अपने इतिहास की पृष्ठभूमि को देखते हुए मैं मानता हूं कि एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का होना हमारे लिये बहुत जरूरी है। एक समय ऐसा था कि जो कोई भी साहसी यात्री दुनिया के किसी भाग से यहां पहुंचता था, वह सम्पत्ति पा जाता था। जो भी साहसी आक्रान्ता यहां आया उसने असानी से अपना राज्य यहां स्थापित कर लिया। इस लिये हमें एक सुदृढ़ केन्द्र की जरूरत है। मैं यहां के निवासियों की प्रवृत्तियों से भी परिचित हूं और उनसे सदा सतर्क हूं। यह ऐसा जमाना है कि सभी जगह और कम से कम भारत के कुछ हिस्सों में तो जरूर ही राजनीतिक पार्टियां अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन कर रही हैं। कांग्रेस स्वयंसेवक भी, जो कम से कम एक बार जेल हो आये हैं वह मंत्री बनने की ही बात सोच रहे हैं। आज हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा यही समझ रहा है कि केन्द्र में या प्रान्त में कहीं न कहीं वह मंत्री तो बन ही सकता है। इसलिये अपने देश वासियों की प्रवृत्तियों को और अपने इतिहास की पृष्ठ भूमि को देखते हुए, मैं इस बात को जानता हूं कि हमारे लिये एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। पर हमें यह न भूलना चाहिये कि भारत है क्या। यह एक महादेश है जिसमें भिन्न-भिन्न भाषा के बोलने वाले, भिन्न भिन्न जाति के, भिन्न-भिन्न धर्म और मनोवृत्ति के लोग बसे हुए हैं जो एक-दूसरे के रीति रिवाज और रहन सहन को

[श्री पी.टी. चक्को]

प्राय: इर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। यहां संस्कृति, धर्म, सम्प्रदाय प्रजाति एवं भाषा के आधार पर कितने ही अल्पसंख्यक वर्ग बन गये हैं जिनके हित परस्पर विरोधी हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि हमें संघ-राज्य बनाने की आवश्यकता है और तदनुसार हमने संघ-राज्य बनाने का फैसला भी किया है। किन्तु मुझे अपने इस नये संविधान के संघात्मक होने में सन्देह है। यों देखने में यह संघात्मक अवश्य प्रतीत होता है पर मेरी राय में सारत: यह एकात्मक संविधान ही है। उदाहरण के लिये आप केन्द्र की विधायिनी शक्तियों को ही लीजिये। राज्यों को खास खास बातों के बारे में विधि निर्माण की शक्ति दे दी है और अवशिष्ट शक्तियां दी गई हैं केन्द्र को जो अमेरिका या आस्ट्रेलिया के संविधान में नहीं किया गया है।

फिर समवर्ती सूची और संघसूची को देखकर, जिस पर केन्द्र को विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है, कोई भी इस बात को समझ सकता है कि प्रत्येक ऐसा विषय जो प्रदेश के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसे इन्हीं दोनों सूचियों में रखा गया है। साधारण काल में भी केन्द्र ऐसे किसी विषय पर विधि बना सकता है जो प्रदेश के लिये महत्वपूर्ण है। और फिर अनुच्छेद 249, 250, 253 तथा 269 के उपबन्धों पर अमल करते हुए संसद राष्ट्र के हित में या आपस की स्थिति में अथवा किन्हीं करारों को कार्यान्वित करने के लिये किसी भी विषय पर, या पांच साल की अस्थायी अवधि के लिये चन्द कई विषयों पर, संसद् विधि बना सकती है। इन सब बातों से आप यह देख सकते हैं कि सारे अधिकार दिये गये हैं केन्द्रीय संसद को और राज्यों के विधान मण्डलों को वस्तुत: कोई अधिकार ही नहीं दिया गया है। इस तरह सारत: भारत प्राय: एकात्मक राज्य ही बनाया गया है।

कार्यपालिका सम्बन्धी बातों के बारे में भी असाधारण शक्तियां केन्द्र में ही निहित रखी गई हैं। आपात-शक्तियों के अलावा, अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन केन्द्र अंगभूत राज्यों को निदेश भी दे सकता है। राज्यों को इन निदेशों का पालन करना पड़ेगा अन्यथा अनुच्छेद 365 के अधीन राज्य दण्डित किये जा सकते हैं मुझे तो यही प्रतीत होता है कि इन सभी उपबंधों से संविधान का एकात्मक स्वरूप सर्वथा स्पष्ट है। केन्द्र को कितनी शक्तियां दी गई हैं इसे मैं गणनावार भी बताये देता हूं–

(1) अविशष्टि अधिकार केन्द्र में निहित रखे गये हैं। (2) ऐसा कोई विषय नहीं है जिसके बारे में केन्द्र कानून न बना सकता हो और और साधारण काल में भी उसे सभी विषयों के बारे में कानून बनाने का अधिकार है। (3) राज्य-सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने के लिये उसे विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। (4) राज्य अपने संविधान में अपनी मरजी के मुताबिक परिवर्तन भी नहीं कर सकते हैं। (5) राज्य निर्मित-विधियों पर संसद-निर्मित विधियों को प्राप्त रहेगा। (6) केन्द्र में कार्यपालिका सम्बन्धी असाधारण शक्तियां निहित रखी गई हैं।

अब मैं इस बात की ओर आता हूं कि संविधान में देशी राज्यों की स्थिति क्या है। अनुच्छेद 371 के अधीन देशी राज्यों को दस साल तक के लिये केन्द्र

के अधीन रखा गया है। अनुच्छेद 371 को अनुच्छेद 365 के साथ मिला कर पढ़िये तो आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि देशी राज्यों को सर्वथा दास की स्थिति में डाल दिया गया है। मुझे दुख होता है उस दीर्घ कालीन संग्राम का ख्याल करके जिसमें देशी राज्यों के निवासियों का योगदान कम नहीं रहा है। देशी राज्यों में कई लोग ऐसे हुए हैं जिन्होंने इस स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी है। इस संग्राम के लिये छोटा मोटा त्याग करने वाले भी अनेक हम लोगों में हैं। पर इस संग्राम का अन्तिम परिणाम हमारे लिये क्या मिल रहा है। विदेशी सामाज्यवाद की जगह अब भारतीय साम्राज्यवाद का जुआ हमारे कन्धों पर लद रहा है। यह सच है कि स्वेच्छा-चारी शासन व्यवस्था के चिन्ह स्वरूप जो कतिपय अवशिष्ट देशी राज्य रह गये थे उन्हें भी सरदार पटेल ने, मानो जादू का करिश्मा करके मिटा दिया है। किन्तु हम यह देखते हैं श्रीमान कि हमें अब केन्द्र के अभिभावकत्व में रखा गया है और हमें प्रायः अवयस्क समझा जा रहा है। मैं यह पूछता हूं कि आपका यह स्वायत्त शासन कहां गया जिसकी सन् 1947 में इतनी चर्चा की जाती थी? कहां है वह स्वायत्त शासन जिसके लिये सन् 1947 में, जब मंत्रिमण्डल बनाने की बात कांग्रेस स्वीकार करने वाली थी, हुकूमत से आश्वासन मांगा गया था?

संविधानिक कानून का यह एक सर्वविदित सिद्धान्त है कि संघ के अंगभूत राज्यों के सम्बन्ध में किसी के पक्ष में कोई रियायत या किसी के विरुद्ध कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिये। आस्ट्रेलियन संविधान में व्यापार, वाणिज्य के सम्बन्ध में धारा 99 में यह कहा गया है कि कामनवेल्थ (केन्द्र) व्यापार वाणिज्य या राजस्व सम्बन्धी किसी विधि या विनियमन द्वारा किसी एक राज्य को दूसरे राज्य पर कोई तरजीह नहीं देगा। आस्ट्रेलियन संविधान की धारा 51(2) भी कर के सम्बन्ध में कोई विभेद बरतने पर रोक लगाती है। अमेरिका में रियासतें इसी शर्त पर संघ में शामिल हुई हैं कि सब रियासतों को समान संविधानिक अधिकार एवं शक्तियां प्राप्त रहेंगी। जिन नई रियासतों को वहां बाद में संघ में शामिल किया गया था उनके बारे में भी वहां की सर्वोच्च अदालत ने यही फैसला दिया था कि असमानता लाने वाली कोई भी शर्त कांग्रेस नई रियासतों पर नहीं लाद सकती है। इसी प्रश्न को लेकर वहां कोयेल बनाम स्मिथ का एक मामला चला था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि संघ में शामिल होते समय यदि किसी रियासत ने किसी शर्त को मान भी लिया था तो वह शर्त अवैध समझी जायेगी अगर वह उस रियासत को अन्य रियासतों के समक्ष आने से रोकती हो। अमेरिका के संयुक्त राज्य की अंगभूत सभी रियासतों को अधिकार और शक्ति के बारे में समता प्राप्त है। किन्तु अपने संविधान में हम यह पाते हैं कि उन राज्यों के बीच जो केवल घटनाओं के कारण किसी समय रियासत के नाम से पुकारे जाते थे तथा उन राज्यों के बीच जो अब प्रान्त नाम से ज्ञात हैं विभेद बरता गया है। रियासत नाम से ज्ञात राज्यों को दस साल के लिये आखिर क्यों केन्द्र की पूर्ण अधीनता में और उसके प्रबंधाधीन रखा जाये श्रीमान? क्या ऐसा इस आधार पर किया जा रहा है कि प्रान्त देशी राज्यों से अधिक समुन्नत और प्रगतिशील है? मैं इसे नहीं मान सकता कि प्रान्त देशी राज्यों से अधिक प्रगतिशील हैं। जैसा कि अनुच्छेद 371 विचार होते समय सभी वक्ताओं ने यहां कहा है,

[श्री पी.टी. चक्को]

कई देशी राज्य ऐसे हैं जो प्रान्तों से अधिक समुन्नत हैं। इसलिये मैं नहीं समझता कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 371 तथ 365 को संविधान में रखने के लिये जो कारण यहां बताया है वह वस्तुतः सही है। इन उपबन्धों के कारण देशी राज्यों की तुलना में प्रान्तों को अधिक सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** प्रगतिशील रियासतों के बारे में तो यह उपबन्ध लागू ही नहीं होंगे।

***श्री पी.टी. चक्कोः** यह कहा जा रहा है श्रीमान् कि ये उपबन्ध ऐसी रियासतों पर लागू नहीं होंगे। मैं नहीं समझ सकता हूं कि फिर इनको रखा ही किस लिये जा रहा है। जब संविधान में यह कह दिया गया है कि देशी राज्य कुछ काल तक केन्द्र के नियंत्रणाधीन रहेंगे तो उसके प्रतिकूल जबानी तौर पर कोई कुछ भी क्यों न कहे उसका कोई मतलब नहीं हो सकता है। हां यह जरूर है कि सरदार पटेल द्वारा दिये गये आश्वासन को मैं महत्वपूर्ण मानता हूं और उसे वज़नी समझता हूं। पर फिलहाल मैं विचार कर रहा हूं संविधानिक स्थिति पर। इस सभा के लिये यह आसान था कि वह संविधान में ही यह कह देती कि प्रगतिशील रियासतें इस उपबन्ध से बरी रहेंगी।

***श्री मोहन लाल गौतम** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): इस आशय का एक परन्तुक संविधान में है कि राष्ट्रपति ऐसी छूट दे सकता है।

***श्री पी.टी. चक्कोः** अवश्य इस आशय का एक परन्तुक संविधान में है। इससे भविष्य में चल कर लाभ पहुंच सकता है। किन्तु मेरा कहना यह है कि यह सभा ही संविधान इसके लिये उपबन्ध रखकर रियासतों को इसके प्रभाव से बरी कर सकती थी। इसलिये जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है, मैं यह कहूंगा कि रियासतों और प्रान्तों के बीच संविधान में विभेद बरता गया है और प्रान्तों के साथ पक्षपात किया गया है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** इसके लिये संविधान में एक परन्तुक रखा तो गया है।

***श्री पी.टी. चक्कोः** यह परन्तुक तो भविष्य के लिये रखा गया है पर हम चाहते तो रियासतों को अभी से इस उपबन्ध से बरी रख सकते थे। इसमें हमें कोई दिक्कत नहीं थी। संविधान को देखने से आपको ज्ञात होगा कि कई प्रयोजनों के लिये कई रियासतों के बारे में छूट का उपबन्ध संविधान में रखा गया है। इस बारे में भी हम संविधान में ऐसी छूट के लिए उपबन्ध रख सकते थे। संविधानिक कानून का यह एक सर्वविदित सिद्धान्त है कि विधान मण्डल को प्रदत्त की शक्तियां किसी अन्य प्राधिकारी को नहीं सौंपी जा सकती हैं। (पनामा रिफानिंग कम्पनी बनाम रियन का मामला) यह भी एक सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है। कोई प्राधिकारी जिसे कोई शक्तियां सौंपी गई हों वह उन सौंपी गई शक्तियों को किसी अन्य व्यक्ति या निकाय को नहीं सौंप सकता है। अमेरिका में यह हुआ था कि संविधान का मसौदा तैयार हो जाने पर उसे सभी रियासतों के पास भेजा गया था उनके अनुसमर्थन के लिये। आस्ट्रेलिया में भी ऐसा ही किया गया था। दक्षिणी

अफ्रीका तक में भी ऐसा ही हुआ था। संविधान के मसौदे का सभी उपनिवेशों ने अनुसमर्थन किया था और उसके बाद यह अन्तिम रूप से संसद द्वारा स्वीकृत किया गया था। हमने भी संविधान के मसौदे को रियासतों के पास भेजा था कि उनके विधान मण्डलों द्वारा उसको अनुसमर्थन प्राप्त हो जाये। हमारे यहां तीन ही रियासतें हैं जिन का अपना विधान मण्डल है और ये रियासतें हैं ट्रावनकोर-कोचीन, मध्यभारत तथा मैसूर की। इन तीनों रियासतों के पास संविधान का मसौदा इनके अनुसमर्थन के लिये भेजा गया था। तीनों ही रियासतों ने संविधान में चन्द संशोधन करने की सिफारिश सर्वसम्मति से की थी। किन्तु संविधान सभा ने विचार-विमर्श के समय उनकी सिफारिशों पर विचार भी नहीं किया। इस लिये मैं यह पूछता हूं कि रियासतों के अनुसमर्थन के लिये संविधान को उनके पास भेजने की फिर जरूरत ही क्या थी? अमेरिका वालों का तो इस सिद्धान्त में विश्वास था कि विधान-मण्डल की शक्तियां किसी अन्य निकाय को नहीं सौंपी जा सकती हैं। उनको जनता से जो शक्ति प्राप्त हुई थी उसे वह अन्य निकाय को नहीं दे सकते हैं। इसीलिये वहां संविधान को विभिन्न अंगभूत राज्यों के पास उनके अनुसमर्थन के लिये भेजा गया था। यदि राज्यों के विधान-मण्डल अपने अधिकारों को यहां आये अपने प्रतिनिधियों को नहीं सौंप सकते थे तो फिर संविधान पर रियासतों का अनुसमर्थन प्राप्त कर लेना अवश्य जरूरी था। अगर इसी लिये संविधान को रियासतों के पास भेजा गया था कि उनके विधान मण्डलों का अनुसमर्थन उसे मिल जाये तो इसका अनुसमर्थन उन्होंने किया था चन्द संशोधनों का सुझाव रखते हुए। किन्तु मुझे खेद है कि विचार के समय इस सभा ने उनके किसी भी संशोधन पर विचार तक नहीं किया। इसलिये रियासतों ने संविधान को जो अनुसमर्थन दिया है उसे सम्यक या वैध मानना विवाद से खाली नहीं है।

भविष्य में जब अनुच्छेद 371 और 365 पर अमल किया जायेगा तो उस समय इन रियासतों के विधान-मण्डलों की स्थिति क्या होगी? केन्द्रीय शासन राज्य की सरकार को कोई कानून बनाने का निदेश दे सकता है क्योंकि राज्य की सरकार पूर्ण रूप से केन्द्र के अधीन है। अब मान लीजिये, राज्य का विधान-मण्डल जिसे अधिकार प्राप्त रहता है जनता की ओर से—उदाहरण के लिये ट्रावनकोर-कोचीन का विधान मण्डल वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होता है ओर उसे सीधे जनता से अधिकार मिलता है—वह केन्द्र के निदेशानुसार कानून नहीं बनाता है और वैसा कानून बनाने से इनकार कर देता है। ऐसी स्थिति में क्या होगा? अनुच्छेद 365 के अधीन केन्द्र यह कहेगा संविधान के उपबन्धों के अनुसार उस राज्य का शासन नहीं चलाया जा रहा है। उस स्थिति में उस राज्य का शासन केन्द्र अपने हाथ में ले लेगा। इसका मतलब यह हुआ कि केन्द्र के निदेश को न मानने के लिये राज्यों को दण्ड भुगतना पड़ेगा। राज्य का शासन केन्द्र के हाथ में जाने पर उसके विधान-मण्डल के पास वह शक्ति नहीं रह जायेगी जो उसे जनता से मिली होगी। उसके बाद तो उसे वह अधिकार भी नहीं प्राप्त होंगे जो खुद संविधान ने उसे दे रखे हैं। मैं नहीं कह सकता कि जनता द्वारा जो अधिकार राज्यों के विधान मण्डलों को प्राप्त हैं, उनको खत्म करना कहां तक ठीक हो सकता है। इसलिये मैं तो यही कहूंगा कि कम से कम दस साल के लिये—

[श्री पी.टी. चक्को]

और फिर इस अवधि को संसद बढ़ा भी सकती है—प्रान्त नामधारी राज्यों के साथ पक्षपात मूलक व्यवहार तो किया ही गया है और देशी राज्यों के विरूद्ध विभेद बरता गया है।

अपने संविधान में निदेशक सिद्धान्त भी रखे गये हैं। आयरिश संविधान को छोड़ कर और शायद वाइमार संविधान को छोड़कर दुनियां के और अन्य किसी भी संविधान में ऐसे निदेशक सिद्धान्त नहीं रखे गये हैं जिनको संविधान के अधीन निर्मित किसी निकाय द्वारा क्रियान्वित न कराया जा सकता हो, यह तो ऐसा लगता है मानो पार्टी ने अपने प्रोग्राम की बात कार्यक्रम-पत्र में कही हो। फिर संविधान में ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों को रखने की जरूरत ही क्या है जिनको संविधानाधीन निर्मित किसी निकाय या प्राधिकारी द्वारा क्रियान्वित न कराया जा सकता हो? मेरे मतानुसार अपने संविधान में तथा जर्मनी के वाइमार संविधान में कतिपय बातों के सम्बन्ध में सादृश्य अवश्य है। यह बात केवल वाइमार संविधान में ही आपको मिलेगी कि संसद को असाधारण शक्तियां दी गई हैं पर वहां भी अवशिष्ट अधिकार राज्यों में ही निहित रखे गये हैं। केन्द्र कार्यपालिका को भी असाधारण शक्तियां दी गई हैं। वाइमार संविधान में भी कुछ निदेशक सिद्धान्त रखे गये थे जिनको क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता था। यही वह संविधान है जिसने कुछ दिन तक अमल मे रहने पर हिटलर की उत्पत्ति की थी।

इसलिये मैं यह जरूर कहूंगा कि कम से कम राज्यों से आये हम प्रतिनिधियों को इस बात का बड़ा खेद है कि भारतीय जनता के प्रतिनिधि लोग एक ऐसा संविधान अपने लिये स्वीकार कर रहे हैं जो कई बातों में उस संविधान से मिलता हुआ है जिसने हिटलर को उत्पन्न किया था और यह संविधान भी भविष्य में चल कर, अगर अविवेकी व्यक्तियों के हाथ में शक्तियां आई तो एक-दूसरे हिटलर की उत्पत्ति कर सकता है।

इस बात को मैं जानता हूं कि संविधान के प्रयोग की सफलता संविधान के उपबन्धों पर उतना निर्भर नहीं करती है जितना कि देश वासियों के चरित्र पर और जमाने की हालत पर। अतः इन त्रुटियों को मानते हुए भी मैं जानता हूं कि हमारा यह कर्तव्य है कि इस संविधान पर सफलतापूर्वक अमल करने की हम ईमानदारी से कोशिश करें। हमें इस बात का विश्वास करना चाहिये कि यह अंधकार शीघ्र ही दूर हो जायेगा और आगे प्रकाश आने पर हम संविधान में संशोधन कर सकेंगे तथा सभी राज्यों को समान स्तर पर रखेंगे और उनको कुछ अधिकार देंगे। संविधान की कमियों को जानते हुए हमें इसे सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने की कोशिश करनी चाहिये।

इसके बाद सभा मध्याह्नकालीन भोजन के लिये 3 बजे तक के लिये उठ गई।

मध्याह्नकालीन भोजन के बाद सभा दिन के तीन बजे अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुनः समवेत हुई।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं अपनी बात शुरू करूंगा अपने सुयोग्य सभापति के प्रति अपनी सच्ची एवं हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जिनकी धीरता, सहनशीलता और न्याय प्रियता ने सभा की समस्त कारवाई में हमारा पथ प्रदर्शन किया है तथा सभा की कार्रवाई का सफलता पूर्वक संचालन कराने में बहुत हाथ बंटाया है।

अन्य मित्रों का साथ देते हुए, मैं भी मसौदा समिति को और विशेषकर उसके अध्यक्ष को धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने इस कठोर परिश्रम के साथ प्रसन्नता पूर्वक इस काम को पूरा किया है। यह काम एक बड़ा ही विशाल काम रहा है, और उसके पूरा हो जाने पर समिति ने ऐसा अनुभव किया होगा मानो एक कठिन भार से वह मुक्त हुई हो।

हमने जो संविधान बनाया है वह दुनिया का वृहत्तम संविधान है। अन्य देशों के संविधान इससे कहीं छोटे और सरल हैं। अवश्य ही अपने इस कृतित्व पर हमें हर्ष नहीं है।

अपने वर्तमान नेताओं के बड़कपन का शायद संविधान बनाने वाले विशेषज्ञों पर ऐसा जादू पड़ा है। कि उनकी दृष्टि में सुदूर की बातें आ ही नहीं सकीं। संविधान बनाने में हमें वर्तमान का ही नहीं बल्कि सुदूर भविष्य का भी ख्याल रखना चाहिये था। हमने यह मान कर संविधान बनाया है कि हमारे संघ-राज्य को भविष्य में भी ऐसे ही महान नेताओं को पाने का सौभाग्य प्राप्त रहेगा।

संविधान बनाने में किसी एक खास प्रकार के संविधान का अनुगमन नहीं किया है। विभिन्न प्रकार के संविधानों के आधार पर यह संविधान तैयार किया है इसलिये यह टिकाऊ नहीं हो सकता है क्योंकि न तो यह देशीय है और न पूरी तौर पर किसी खास एक संविधान के आधार पर ही तैयार किया गया है। यह संविधान न संघात्मक और न एकात्मक। यह संविधान क्या तैयार किया गया है एक पहेली तैयार की गई है। इसके हर भाग एक-दूसरे से सर्वथा अपरिमित हैं।

भारत-शासन-अधिनियम 1935 में ब्रिटेन निर्भीत एक संविधान-काया तो हमारे पास पहले से ही मौजूद थी। अमेरीकन प्रणाली का अनुगमन करके इसके लिए हमने राष्ट्रपति की व्यवस्था की है। इस काया के पुराने अंकों की जगह हमने ब्रिटेन की संसदात्मक प्रणाली को स्थान दे रखा है तथा आस्ट्रेलिया संविधान की अकठोरता या लचीलापन और कनाडियन संविधान की एक न्यायपालिका वाली व्यवस्था को इसमें स्थान दे रखा है। आयरिश संविधान से भी हमने एक बात ली है। अपेन निदेशक सिद्धान्त वहीं से लिये गये हैं। इस तरह विभिन्न संविधानों से विभिन्न व्यवस्थायें लेकर हमने संविधान रूपी यह खिचड़ी तैयार की है। इसका किस तरह विकास होगा और किस तरह यह काम करेगा इसे कोई नहीं जानता। फिर मेरा कहना यह भी है श्रीमान, कि कई बातों के बारे में और खास कर के प्रस्तावना में बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। न्याय, स्वातंत्र्य तथा समता दिलाने के अलावा हमने प्रस्तावना में बन्धुत्व स्थापित करने का भी संकल्प

[सरदार हुकम सिंह]

व्यक्त किया है जो वर्तमान समय में सर्वथा एक असम्भव बात है। फिर हमने विचार-स्वातंत्र्य का पक्का आश्वासन दे रखा है जो एक अद्‌भुत बात है। विचार का सम्बन्ध है मनुष्य के मस्तिष्क से और जब तक कोई अपना विचार व्यक्त नहीं करता है राज्य या किसी व्यक्ति को उसके विचार का क्या पता हो सकता है। ऐसे ऊंचे-ऊंचे आदर्शों को अमल में लाना बड़ा असम्भव है और खासकर के धर्मनिरपेक्ष राज्य में। फिर संविधान में यह भी कहा गया है कि सबको समता प्राप्त रहेगी जो बिल्कुल कोरी कल्पना और झूठी शेखी बघारने की ही बात है। समता लोगों को प्राप्त हो सकती है केवल साम्यवादी राज्य में।

अब मैं आता हूं मूलाधिकारों की ओर। इनको भाग 3 में रखा गया है और इस भाग को सरसरी निगाह से देखने पर आपको यही प्रतीत होगा कि मूलाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये सम्यक व्यवस्था की गई है। इस भाग में इन अधिकारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है और इनके संरक्षण का भार सौंपा गया है सर्वोच्च न्यायालय को। इन अधिकारों के रक्षण की दिखावटी प्रत्याभूति भी दी गई है।

किन्तु ध्यान से इन अधिकारों पर गौर करने पर यह मालूम होगा कि इन अधिकारों को और खास करके अनुच्छेद 19 में रखे गये स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों को ऐसे अपवादों और प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया है कि ऐसी स्थितियों के लिये यह सर्वथा अप्रभावी हो गये हैं जब कि उनको किसी तरह की कमी साधारणत: शंका का कारण बन सकती है। अन्य संविधानों की तरह अपने संविधान में भी शासन और स्वतंत्रता का दायरा अलग-अलग रखा गया है किन्तु ऐसा करने में किया यह गया है कि अहस्तान्तरणीय या अपरिवर्तनीय अधिकारों की परिभाषा देने में विधान मण्डल को इतनी छूट दी है कि इन अधिकारों की स्थिति सर्वथा संदिग्ध हो जाती है और उनके रक्षण की जो प्रत्याभूति दी गई है वह छिन जाती है।

4 नवम्बर सन् 1948 को संविधान को पेश करते हुए जो आरम्भिक भाषण डॉ. अम्बेडकर ने दिया था उसमें एक स्थल पर आपने यह कहा था:—

> "भारतीय भूमि स्वभावत: अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है।"

> "ऐसी परिस्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधानमण्डल पर न छोड़ना ही श्रेयस्कर है।"

मैं चाहता हूं कि अपने इस विश्वास के अनुसार ही संविधान में उपबंध रखने का हमने निर्णय किया होता। किन्तु हुआ यह कि न्यायपालिका की अपेक्षा विधान मण्डल पर ही अधिक भरोसा और विश्वास किया गया है और यह बात संविधान में सर्वत्र दिखाई देती है।

मेरी राय में यह एक गलत बुनियाद है जिस पर हमने अपने संविधान का समूचा ढांचा खड़ा कर रखा है। व्यक्ति और राज्य के प्रति समुचित न्याय करने के बारे में विधान मण्डल की अपेक्षा न्यायपालिका पर हम अधिक निश्चिंतता के साथ भरोसा कर सकते हैं।

अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त सभी अधिकार वस्तुतः आधृत हैं इस महत्वपूर्ण उपबंध पर कि प्रतिबंध आरोपित करने वाली वर्तमान विधियों के तथा आगे बनाई जाने वाली विधियों के अधीन रहकर ही ये अधिकार प्रभावी होंगे। इस संविधान के प्रारम्भ पर भला नागरिक क्या परिवर्तन अनुभव कर सकते हैं? इस सम्बन्ध में हमें यह बताया गया था कि अमेरिका में भी मूलाधिकार सर्वथा प्रतिबंधशून्य नहीं हैं और यह कहा गया कि अनुच्छेद 19 में रखे गये प्रत्येक प्रतिबंध के समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम एक निर्णय का हवाला तो दिया ही जा सकता है। यह कैसा अद्‌भुत तर्क है? यदि किसी स्थिति विशेष में बड़े ही आवश्यक मामले में वहां की सर्वोच्च अदालत ने कोई प्रतिबंध रखने का फैसला किया था तो क्या उस प्रतिबंध को अपने संविधान का एक ऐसा उपबंध बनाना जिसे विधान मण्डल अपनी अनुकूलता के अनुसार जब चाहे अमल में ला सकता हो, तर्कसंगत माना जा सकता है? अमेरिका में इसका अन्तिम निर्णायक सर्वोच्च न्यायालय है कि कब किस परिस्थिति में इन अधिकारों पर कोई प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है और अपने संविधान में इसका अन्तिम निर्णायक विधान मण्डल को माना गया है। यह अन्तर एक जबरदस्त अन्तर है। हम दो पद्धतियों में से किसी एक को चुन सकते हैं। या तो हमें ब्रिटेन की प्रणाली लेनी चाहिये जिसमें संविधानिक परिणामों का सर्वथा अभाव है या हमें अमेरिका की प्रणाली अपनानी चाहिये जिसमें इन अधिकारों के परिमाण की व्यवस्था इतनी पूर्ण है जितनी कि मानव बुद्धि सोच सकती है। किन्तु अपने संविधान में इन दोनों प्रणालियों को समझौता कर के एक बीच का मार्ग अपनाया गया है पर इस पर अमल करना असम्भव है। विधान मण्डल पर हमने कई रोक लगा रखे हैं और इस तरह इस बात को स्वीकार किया है कि विधान मण्डल से खतरा हो सकता है। पर आगे चल कर स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार विधान मण्डल को ही दे किया है। जिस डाकू से आशंका है उसी को हमने जज बना दिया है और सम्भाव्य आक्रान्ता को ही मध्यस्थ मान लिया है। यह तो सरासर लोगों को धोखा देना है।

फिर हमने संविधान में आपात उपबंध रखे हैं। राज्यपाल या राज्यप्रमुख के प्रतिवेदन पर अनुच्छेद 358 के अधीन आपात की उद्‌घोषणा होते ही हमारी सारी स्वतंत्रतायें समाप्त हो जायेंगी। आपात की केवल उद्‌घोषणा के आधार पर ही समूचा नागरिक स्वातंत्र्य नहीं छिन जाना चाहिये। नागरिक स्वातंत्र्य को तो तभी खत्म करना चाहिये जब देश से असैनिक शासन उठ जाये। और फिर ये सभी अधिकार अपूर्ण हैं जब तक कि नागरिकों को काम पाने का अधिकार नहीं दिया जाता है। क्या आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि किसी भी स्वायंत्र्य का उपभोग कोई ऐसा नागरिक कर सकता है जो काम के अभाव में भूख से पीड़ित हो कर मारा मारा फिर रहा है और उसके सामने चिन्ता का यह भूत खड़ा हो कि उसके बाल बच्चे भूख से छटपटा रहे होंगे? ऐसे नागरिक के लिए हमने कोई उपबंध रखा है क्या?

क्या ऐसे नागरिक को प्रशासन से कोई दिलचस्पी हो सकती है? वह तो यही चाहेगा कि ऐसे प्रशासन को उखाड़ फेंका जाये। भौतिक साधनों के सम्बन्ध में जो अनिश्चितता है उसे जब तक दूर नहीं किया जाता है तब तक इन स्वातंत्र्यों का कोई मूल्य नहीं हो सकता है और यह स्वातंत्र्य कोरे कागजी स्वातंत्र्य ही बने रहेंगे।

[सरदार हुकम सिंह]

निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मैं पहले ही कह चुका हूं कि यह अध्याय व्यर्थ रखा गया है। (**एक सदस्यः** यह अध्याय है या व्याधि?) है तो यह अध्याय पर यहां यह व्याधिवत् लगता है। मेरा विश्वास यह है कि अधिकारों का कोई महत्व नहीं जब तक कि उनको क्रियान्वित न कराया जा सकता हो। शुरू में यह स्वीकार किया गया था कि इन सिद्धान्तों को संविधान में रखना ठीक नहीं होगा किन्तु दुराग्रह करके इनको रख दिया गया है। भाग 4 के पढ़ने से पाठक को यही धारणा होगी कि अपना राज्य एक समाजवादी राज्य होगा किन्तु शेष संविधान में कहीं भी कोई ऐसी बात नहीं मिलेगी जिससे इस मधुर धारणा की पुष्टि हो सकती हो।

अब हम आते हैं भाग 5 पर जिसमें राष्ट्रपति के सम्बन्ध में उपबंध रखे गये हैं। राष्ट्रपति अपने भारतीय संघ का प्रधान अधिशासी होगा। संविधान पेश करते हुए जो आरम्भिक भाषण मसौदा समिति के अध्यक्ष ने दिया है उसमें राष्ट्रपति के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसको संविधान के अनुसार यहां वही स्थान प्राप्त है जो इंग्लैंड में सम्राट को प्राप्त है; वह राज्य का प्रधान है किन्तु कार्यपालिका का नहीं; राष्ट्र के प्रतीक के रूप में वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है पर उस पर शासन नहीं करता है। प्रशासन के क्षेत्र में उसकी उपयोगिता यह बताई गई है कि उसकी मुहर लगा कर एक रस्म पूरी की जाती है। किन्तु जो संविधान अब हमने स्वीकार किया है उसमें उसे विस्तृत और व्यापक शक्तियां दी गई हैं। अनुच्छेद 54 के अधीन विधान मण्डलों के सदस्यों द्वारा ही वह निर्वाचित होगा, इसलिये बहुत सम्भव है कि वह बहुमत प्राप्त दल का ही आदमी होगा। संविधान के अतिक्रमण के लिए ही अनुच्छेद 61 के अधीन उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है अन्य किसी दुर्व्यवहार के लिये नहीं। मेरी राय में यह व्यवस्था संविधान की एक बड़ी दोषपूर्ण व्यवस्था है।

मेरी दूसरी आपत्ति है अनुच्छेद 68(2) के बारे में। इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। उस दल के हित में जिसने राष्ट्रपति को अधिकारारूढ़ कराया हो, राष्ट्रपति यह कर सकता है कि अपनी पदावधि की समाप्ति से कुछ माह पूर्व अपने पद से इस्तीफा दे दे और पूरे पांच साल की दूसरी अवधि के लिये वह फिर से अपने को निर्वाचित करा ले चाहे आने वाले चुनाव में उसका दल हार भले ही जाये।

फिर अनुच्छेद 75 के अधीन राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। यहां यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि बहुमत प्राप्त दल का नेता ही प्रधान मंत्री होगा और यह भी नहीं कहा गया है कि वह लोक-सभा का निर्वाचित सदस्य होगा। यदि उपबंध के शब्दार्थ पर ही चला जाये तो किसी ऐसे व्यक्ति को भी प्रधान मंत्री बनाया जा सकता है जो लोक सभा का सदस्य नहीं है। लिपिबद्ध संविधान में यह बात रूढ़ियों के लिये नहीं छोड़ी जानी चाहिये थी क्योंकि रूढ़ियों का अभी यहां विकास नहीं हो पाया है।

128, 358, 75 (2) तथा अन्य कई अनुच्छेदों में ऐसे उपबंध रखे गये हैं जिनसे किसी उच्चाकांक्षी राजनीतिज्ञ को डिक्टेटरी शक्तियां अपने हाथ में लेने का मौका मिल सकता है और संविधान के शब्दार्थों पर चलते हुए वह ऐसा कर सकता

है क्योंकि संविधान का निर्वचन तो किया जायेगा उसमें रखे गये शब्दों के आधार पर न कि उसमें रखे गये निहित किसी अव्यक्त आशय के आधार पर। यह सम्भावना कि एक सदाचारी डिक्टेटर शक्ति पाकर बिगड़ जायेगा, अपने वर्तमान नेताओं के सम्बन्ध में एक दूर की बात भले ही हो सकती है पर ऐतिहासिक दृष्टि से अमर होने पर भी ये लोग शरीरत: सदा तो अमर नहीं बने रहेंगे। संविधान में उक्त बात का ख्याल नहीं किया गया है। हमारे वर्तमान ने दरअसल हमें गुमराह कर दिया है। हमें यह समझना चाहिये था कि अपना संविधान अपने वर्तमान नेताओं के उठ जाने के बाद भी बना रहेगा। इस बात को बचाने के लिये कि डिक्टैटरी का प्रादुर्भाव न हो हमने कोई व्यवस्था नहीं की है। एक व्यक्ति के हाथ में इतनी विस्तृत शक्तियां देने में, चाहे वह व्यक्ति कितना भी महान क्यों न हो, मुझे बड़ी आशंका है।

अब मैं उन उपबंधों को लेता हूं जो अल्प संख्यकों के सम्बन्ध में रखे गये हैं। आज कल सिखों के जनसमुदाय की क्या भावना है इसे जानने का शायद आपको कौतूहल हो। स्वातंत्र्य के लिये क्या-क्या त्याग लोगों ने किये हैं इसका अगर सिंहावलोकन किया जाये तो सिख अपने कृतित्व पर गौरव का अनुभव कर सकते हैं। सन् 1872 के प्रसिद्ध कुलका विद्रोह में 98 सिख तोप से उड़ा दिये गये थे। 1907 में सरदार अजित सिंह और अन्य कई सिखों ने आन्दोलन में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था। सन् 1912-16 के गदर आन्दोलन के दिनों में कामागाटा मारू और अन्य जहाजों से लाये गये क्रांतिकारियों के आ जाने से आन्दोालन ने बड़ा काफी ज़ोर पकड़ लिया था। इन जहाज़ों से आये क्रांतिकारी अधिकतर सिख थे जो देश के लिये प्रसन्नता पूर्वक फांसी के तख्तों पर लटक गये। सन् 1919 में मार्शल ला के ज़माने में भी सिखों ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध खुला विद्रोह किया था और बड़ी यातनायें झेली थीं। इसमें शक नहीं कि गुरुद्वारा आन्दोलन गुरुद्वारों में धार्मिक सुधार करने के उद्देश्य से ही संगठित किया था पर इसका राजनीतिक महत्व भी कम नहीं था क्योंकि अपने महान त्याग और कठोर नियंत्रण के द्वारा सिखों ने शासकों की शान को जनता की निगाह में बहुत गिरा दिया था।

सन् 1937 में अकाली दल ने कांग्रेस के साथ मेल किया और चुनाव में राष्ट्रीय कार्यक्रम के आधार पर युनियनिस्ट दल के विरुद्ध जिसने कि नौकरशाही से गठबंधन कर रखा था इनको जीत मिली। कांग्रेस के साथ उन का यह मेल और भी मजबूत हो गया होता पर चूंकि एक सम्मिलित मोर्चा बनाने के उद्देश्य से कांग्रेस मुस्लिम लीग से मेल बढ़ाने और उसे खुश करने में लग गई इस लिये ऐसा न हो सका। सिखों को आशंका इस बात की थी कि देश को स्वतंत्र करने की फिक्र में कांग्रेस कहीं उनके प्रदेश को मुसलमानों को न सौंप दे और वह सदा के लिये उनकी अधीनता में पड़ गये जाये। इन आशंकाओं से प्रेरित होकर सिख समाज के एक वर्ग ने अपना एक स्वतंत्र कार्यक्रम बना लिया। किन्तु इसके बाद भी, इस अल्प समुदाय ने अपने निजी सामाजिकता को सुरक्षित रखते हुए, समझौते की जो बातचीत हुकूमत के साथ सन् 1942, 1945 और 1946 में चली उसमें ईमानदारी के साथ सदा कांग्रेस को अपना समर्थन दिया।

कैबिनेट मिशन की योजना सिखों के लिए समुचित और न्यायपूर्ण नहीं थी और इस बात को कांग्रेस की कार्य समिति ने भी 25 जून सन् 1946 के अपने प्रस्ताव में स्वीकार किया था। सिखों को उस योजना से बड़ा आक्रोश हुआ और प्रान्तिक प्रतिनिधि

[सरदार हुकम सिंह]

मण्डल ने 5 जुलाई सन् 1946 के अपने प्रस्ताव द्वारा संविधान-सभा का बहिष्कार किया जबकि मुस्लिम लीग ने इसे स्वीकार किया। कांग्रेस कार्यसमिति ने 10 अगस्त सन् 1946 की अपनी बैठक में सिखों से इस बात की अपील की कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और संविधान सभा में शामिल हों। कांग्रेस कार्य समिति ने सिखों को यह आश्वासन दिया कि 'कांग्रेस उनकी वाजिब शिकायतों को दूर करने में और उनके समुचित हितों के रक्षार्थ पर्याप्त परिमाण देने में उनको हर तरह से सहायता देगी।' इस आश्वासन पर सिखों ने फौरन अपने फैसले को बदल दिया और सिख प्रतिनिधियों को यह आदेश किया कि संविधान-सभा में मौका आने पर वह अपने लिये परिमाण का प्रश्न उठावें। उन्हें यह आशा थी कि कांग्रेस 10 अगस्त सन् 1946 के अपने आश्वासन के अनुसार तथा सन् 1929 के वचन के अनुसार सिखों की मांग का समर्थन अवश्य करेगी। उस दिन से सिखों ने कांग्रेस के उद्देश्य को अपना उद्देश्य बना लिया और उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करना शुरू कर दिया। उसके बाद फिर 6 जनवरी 1947 को कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना पर ब्रिटिश हुकूमत का जो भाष्य था उसे स्वीकार कर यह स्पष्ट कर दिया कि पंजाब में सिखों के जो अधिकार हैं उन पर कोई आघात नहीं पड़ने पायेगा। फिर आगे चल कर 8 मार्च सन् 1947 को कांग्रेस कार्यसमिति ने सिखों को यह आश्वासन दिया कि "उनके हितों की रक्षा के लिए जो भी कारवाई करनी आवश्यक होगी उसके लिए कांग्रेस सिख प्रतिनिधियों से परामर्श करती रहेगी ताकि उन को सहयोग दे सके।"

कांग्रेस बार-बार यही घोषित करती रही है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को समुचित परिमाण दिये जायेंगे। किसी तरह के भी परिमाण को पाकर सन्तुष्ट होने पर मुसलमान राजी नहीं थे और वह अपने लिये पृथक प्रदेश की मांग करते रहे। उनको पाकिस्तान मिल गया और अब उनको कोई शिकायत नहीं हो सकती है। आंग्ल-भारतीय समुदाय को भी पर्याप्त परिमाण दिये गये हैं और उनको भी कोई शिकायत नहीं हो सकती है। पारसी और ईसाई शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से यहां के अन्य समुदायों से कहीं समुन्नत हैं और उन्होंने यह घोषित कर दिया है कि वह किसी तरह का परिमाण पाना नहीं चाहते हैं। परिमाणों की मांग केवल सिख समुदाय ही करता रहा है और उसने बार-बार इस बात का आग्रह किया है, अनुरोध किया है, कि उसे परिमाण दिये जायें पर उनकी मांग का कतई कोई ख्याल नहीं किया गया। वह यह नहीं समझ पाते हैं कि आखिर उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया गया है। बहुमत अल्पमत को दबा सकता है उसे सता सकता है पर इन तरीकों से वह उसमें सन्तोष की भावना तो कभी नहीं ला सकता है।

पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को जब उठाया गया तो सिखों ने खुशी से इसे मान लिया। जनसंख्या के आधार पर स्थान रक्षण की व्यवस्था भी उठा दी गई और इसमें भी सिखों ने आपका साथ दिया पर सेवाओं के सम्बन्ध में आर्थिक परिमाण पाने की मांग को सिखों ने स्वेच्छा से कभी नहीं छोड़ा।

अगर छानबीन की जाये तो निस्सन्देह उनकी यह मांग एक नगण्य बात ही सिद्ध होगी किन्तु यह मांग एक ऐसी बात है जिससे बहुमत के सद्भाव की परख

हो जाती है। यह कहा गया है कि धर्म तथा प्रजाति के आधार पर किसी वर्ग को अल्प संख्यक मानना हमारे लिये लज्जा और कलंक की बात होगी। पर संविधान में इसी आधार पर ईसाई समाज को परिमाण दिये गये हैं। सरकार के स्वयं अपने प्रकाशनों के अनुसार इस समाज को धर्म एवं प्रजाति के आधार पर एक अल्पसंख्यक वर्ग माना गया है। हमें यह कहा गया है कि सेवाओं के सम्बन्ध में सिखों की जो मांग है उसके लिये अगर कोई प्रविष्टि रखी जाती है तो इससे संविधान कुरूप हो जायेगा। पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों और ऐंग्लो इंडियनों के लिये इसी तरह की प्रविष्टि रखी गई है और इससे संविधान का सौदर्य नहीं नष्ट हो पाया है। सिख समुदाय की समूची अर्थ व्यवस्था निर्भर करती थी कृषि और सेना सम्बन्धी नौकरियों पर। हमारी सारी जमीन छूट गई पाकिस्तान में और सेना-सवाओं में हमारा जो अनुपात था वह भी देश विभाजन के बाद से धीरे-धीरे रोजाना कम होता जा रहा है।

सिखों की मांगें बहुत साधारण हैं। वह कोई बड़ी मांग आपसे नहीं कर रहे हैं। वह चाहते थे कि पंजाबी भाषियों का एक पृथक प्रान्त बना दिया जाये। उनकी यह मांग नामंजूर कर दी गई। उनकी यह मांग कोई साम्प्रदायिक मांग नहीं थी बल्कि अपने लिये वह एक अलग प्रदेश की मांग कर रहे थे। पर प्रान्त का बहुसंख्यक समाज इसके इतना विरुद्ध हो गया कि उसने यहां तक कह डाला कि पंजाबी तो उनकी मातृभाषा ही नहीं है। बहुसंख्यक समुदाय की इस उग्र नीति के कारण आज पंजाबी जबान खतरे में पड़ गई है। आन्ध्र को एक पृथक प्रान्त बनाने की बात प्राय: पक्की हो गई हे। अन्य प्रदेश वालों की मांगों पर भी यहां ध्यान दिया गया है। पर उत्तरी भारत वालों की मांग पर आज विचार भी नहीं करना चाहते हैं। सिखों की दूसरी मांग यह थी कि सेवाओं में उनको समुचित जगह देने की बात को ध्यान में रखा जाये पर उनकी यह मांग भी नामंजूर कर दी गई है।

श्री खाण्डेकर ने आज यह कहा है कि सिखों में अस्पृश्यता है ही नहीं। उन का यह भी कहना है कि अनुसूचित जातियों की जगहें सिखों को दे गई हैं। उनकी इन बातों के बारे में मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूं। इसमें शक नहीं कि सिख धर्म के अनुसार कोई भी अस्पृश्य नहीं है। पर आप जरा इस बात पर तो विचार कीजिये। एक किसान के दो लड़के हैं और दोनों ही अछूत हैं जिनमें से एक सिख धर्म को अपना लेता है। अब मैं पूछता हूं कि सिख धर्म को अपनाने वाले अछूत की केवल इसलिये उपेक्षा करना क्या ठीक है कि उसने अपना धर्म बदल दिया है। ऐसा करना क्या उसके प्रति धर्म के आधार पर विभेद बरतना नहीं है? मेरा ख्याल है कि इस अन्याय को रोकने के लिये ही यह व्यवस्था की गई है और इसको लेकर अनुसूचित जातियों को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिये। आपने यह भी कहा कि अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों में से सिखों को भी जगहें दी गई हैं। उनकी इस बात को मैं नहीं समझ सका हूं। क्योंकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं उनकी आबादी के हिसाब से। अगर कोई जाति अनुसूचित जाति में शामिल कर ली गई है तो अनुसूचित जातियों की आबादी भी बढ़ जायेगी और उसी हिसाब से उनको जगहें दी जायेंगी। फिर ऐसी हालत में कहना कहां तक ठीक है कि अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों में से सिखों को जगहें दी जा रही हैं?

[सरदार हुकम सिंह]

ऐसी हालत में, जैसा कि मैं कह चुका हूं, सिखों का निराश होना सर्वथा स्वाभाविक है। वह यह महसूस करते हैं कि उनके साथ भेदभाव का बर्ताव किया गया है जो उनके हितों के प्रतिकूल है। यहां यह गलतफहमी न होनी चाहिये कि सिख इस संविधान से राजी हैं। इसके विरुद्ध मैं अपना विरोध व्यक्त करना चाहता हूं। इस ऐतिहासिक लेख्य पर मेरा समुदाय कभी अपनी सहमति नहीं दे सकता है।

अब मैं आता हूं सारी शक्तियों को केन्द्रीय शासन में निहित रखने के प्रश्न पर। गत तीस वर्षों से यहां प्रान्तों को अधिकाधिक स्वातंत्र्य देने की नीति को ही क्रियात्मक रूप देने का प्रयास होता आया है। ऐसा करने का समुचित कारण है। यह देश एक विशाल देश है; यहां के प्रदेश तरह-तरह के लोगों से आबाद हैं जिन की भाषायें भिन्न हैं; सामाजिक रहन-सहन भिन्न हैं। यहां आर्थिक विकास भी सर्वत्र एक सा नहीं हुआ है। इन सब कारणों से समूचे देश में एकरूपता लाना असम्भव सा है। पुराने शासन में भी यहां जब भी शक्तियों को एक जगह केन्द्रित रखने का प्रयास किया है तो उसका परिणाम यह हुआ है कि यह व्यवस्था अपने ही भार से टूट गई है। यहां तो प्रदेशों को स्वतंत्र रख कर, उन पर दायित्व आरोपित कर के और उनके स्वेच्छापूर्ण सहयोग को प्राप्त करके ही समूचे राष्ट्र को बलवान बनाया जा सकता है। पर अपने संविधान का प्रत्येक अनुच्छेद ही स्थानीय स्वातंत्र्य को कम करता है और प्रान्तों को सर्वथा दायित्वशून्य बनाता है।

संक्षेप में कहना यह है कि अपना यह संविधान व्यक्ति को कोई भी ऐसा अधिकार नहीं देता है जो सारवान हो। केवल मीठे वायदे और कोरी सदिच्छायें ही इस संविधान द्वारा हमें प्राप्त होती हैं। मूलाधिकारों को इसमें रखा जरूर गया पर वह भी सर्वथा विधान मण्डल की मर्जी पर छोड़ दिया गया है। काम पाने के अधिकार की इसमें कोई गारन्टी नहीं दी गई है। बुढ़ापे के लिए परवरिश पाने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गई है और न बीमार और अशक्त की परवरिश की इसमें कोई व्यवस्था की गई है। इसमें तो नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये भी कोई उपबंध नहीं रखा गया है। इसमें अल्पसंख्यकों की और खास करके सिखों की तो सर्वथा उपेक्षा की गई है। प्रान्तों की स्थिति नगरपालिका निकायों की सी कर दी गई है। साधारण नागरिक को तो राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया है और राष्ट्रपति को मुगल सम्राट की सुविधायें दी गई हैं ताकि दिल्ली में बैठे-बैठे पूरी शान और तड़क भड़क के साथ वह देश पर हुकूमत करता रहे। संविधान में इस बात की काफी गुंजायश है कि कोई भी उच्चाभिलाषी राष्ट्रपति अपने को यहां का सर्वेसर्वा घोषिता कर सकता है भले ही दिखावटी तौर पर वह संविधान के अधीन ही काम करता समझा जायेगा। जनता की आर्थिक कठिनाइयां जब तक हल नहीं की जाती हैं, यहां असन्तोष और अशान्ति बढ़ती ही जायेगी। इन सब बातों का परिणाम यही होगा कि प्रशासन को फास्सिस्टी राज्य कायम करने में सुविधा मिलेगी जिसकी संविधान में काफी गुंजाइश रखी गई है। ईश्वर ऐसी भयावह स्थिति से हमारी रक्षा करे।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, कई पूर्व वक्ताओं ने यहां मसौदा समिति को तथा उसके अध्यक्ष को इस संविधान पर बधाई दी है। मैं भी उसमें उनका साथ दूंगा।

अनुसूचित जातियों के हिसाब से तो उनकी बात उसी दिन पूरी हो गई जब डॉ. अम्बेडकर मसौदा समिति के अध्यक्ष चुन लिये गये। अनुसूचित जातियों के हितों के वह हमेशा से ही एक बड़े समर्थक रहे हैं। उन्हीं को यहां मसौदा समिति का अध्यक्ष चुना गया। जब से आप अध्यक्ष चुने गये हैं अनुसूचित जातियों के अन्य सदस्यों को इस काम में योगदान देने की कोई विशेष लालसा नहीं रह गई। यह इस लिये नहीं कि वह योगदान देने में अनिच्छुक थे बल्कि इसलिये कि वे जानते थे कि जब डॉ. अम्बेडकर जैसा उनका परम शुभैषी उनके हितों को देखने के लिये वहां है ही तो उनको चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है। वह जानते थे कि डॉ. अम्बेडकर उनके हितों की रक्षार्थ समुचित प्रावधान संविधान में रखेंगे। उनके मसौदा समिति का अध्यक्ष निर्वाचित होने से यह प्रमाणित हो गया कि यद्यपि वह अनुसूचित जाति के सदस्य हैं पर मौका दिये जाने पर वह कितनी महत्ता प्राप्त कर सकते हैं। जिस कार्य-दक्षता और सुयोग्यता के साथ उन्होंने संविधान-निर्माण का काम पूरा किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि मौका दिये जाने पर वह कितना महत्वपूर्ण काम सम्पादित कर सकते हैं। अनुसूचित जातियों को अयोग्य समझा जाता है पर मेरा ख्याल है कि उनके बारे में लोगों की जो ऐसी धारणा है वह अब दूर हो जायेगी। यदि अवसर दिया जाये तो वह भी दूसरों से कम योग्य न निकलेंगे। अनुसूचित जातियों की ओर से जो महान काम उन्होंने पूरा किया है उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। बात यह नहीं है कि अनुसूचित जातियों की शक्ति ने इन को मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाया बल्कि बहुमत प्राप्त दल की सद्भावना के सहारे ही उन्हें यह महत्वपूर्ण पद प्राप्त हो सका है और एतदर्थ हम बहुमत प्राप्त दल के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस संविधान को मैं एक ऐसा संविधान मानता हूं जिससे जनसारण को भलाई और समुन्नति प्राप्त हो सकती है। इस संविधान को हम जनसाधारण का संविधान कह सकते हैं। इस संविधान के द्वारा जमींदारों, उद्योगपतियों और पूंजीपतियों के अधिकारों की अपेक्षा कहीं अधिक रक्षा प्राप्त होती साधारण नागरिक के अधिकारों को। देश के साधारण नागरिकों की स्थिति समुन्नत करने में यह संविधान काफी सहायक हो सकेगा। यद्यपि डॉ. अम्बेडकर समाज के उच्च स्तर पर अवस्थित वर्ग से सम्बंध रखते हैं पर साधारण नागरिक की स्थिति से होकर ही वह इस स्तर पर पहुंच सके हैं और यही कारण है कि संविधान में साधारण नागरिकों के अधिकारों का इतना ख्याल रखा गया है। जनसाधारण के हितों को वह भूल नहीं गये हैं और उन की समुन्नति के लिये जो कुछ हो सका है उन्होंने किया है। 14 से 17 तक के अनुच्छेदों द्वारा अनुसूचित जातियों की स्थिति समुन्नत करने में पर्याप्त सहायता मिल जाती है। अनुच्छेद 14 इस बात का विश्वास दिलाता है कि कानून के सामने सभी नागरिक समान समझे जायेंगे। यह अनुच्छेद एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। अब तक कानून के सामने सभी नागरिक बराबर नहीं समझे जाते थे। अनुच्छेद 15 में यह कहा गया है किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति आदि के आधार पर कोई विभेद राज्य नहीं करेगा। ऐसे संविधान की देश को बड़ी ज़रूरत

[श्री एस. नागप्पा]

थी। अनुच्छेद 16 के द्वारा सबको अवसर समता प्राप्त होती है। इसमें शक नहीं कि अब तक लोगों को अवसर देने की गुंजाइश ही देश में नहीं थी पर मैं आशा करता हूं कि भविष्य में—यद्यपि मेरे ख्याल से तथा संविधान की निगाह में सभी समान हैं—अनुसूचित जातियों को औरों की अपेक्षा अधिक अवसर दिये जायेंगे।

बहुसंख्यक समुदाय ने हमारे इस अनुरोध को—मैं इसे मांग नहीं कहूंगा—कि अभी कुछ वर्षों तक विधान मण्डलों के लिये हमें स्थान रक्षण प्राप्त रहे, मान लिया है। उनकी इस उदारता और विशाल हृदयता के लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। स्थान-रक्षण सम्बन्धी मांग को हम खुशी-खुशी छोड़ देते अगर हमें भी वही हैसियत मिली रहती जो अन्य अल्पसंख्यकों की है, अगर आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से हमारी भी वही स्थिति होती जो अन्य अल्पसंख्यकों की है। पर दुर्भाग्यवश हम न केवल इन बातों में ही औरों से पिछड़े रहे हैं जबकि अछूत होने का कलंक भी हमारे साथ सदा लगा रहा है। बहुसंख्यक समुदाय के हम कृतज्ञ हैं कि उसने आज उस अन्याय को समझा जो शताब्दियों से हम पर वह करता आ रहा है। उन्होंने अब संविधान में एक उपबंध रखकर अस्पृश्यता को उठा दिया है जो सौजन्य की बात है। अस्पृश्यता को हमने उठा अवश्य दिया है पर संविधान निर्माताओं से तथा उन लोगों से जो 26 जनवरी सन् 1950 के बाद उसको अमल में लायेंगे मैं यह अपील करूंगा कि वह इस बात की कोशिश करें कि हर तरह से अस्पृश्यता यहां से उठ जाये। जब आपने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि दस साल के अन्दर देश के सभी लोगों को आप एक समान स्तर पर ला देंगे तो इसको पूरा करने की जिम्मेदारी सबसे ज्यादा आप पर है। आशा है आपकी इस उदारता और सद्भावना की सहायता से हम सब अवश्य उसी स्तर पर पहुंच जायेंगे जो देश के अन्य वर्गों को प्राप्त है। हम सब अपनी ओर से भी इस बात का यथाशक्य प्रयास करेंगे कि यथाशीघ्र हम अभीष्ट स्तर पर पहुंच जायें।

अपने संविधान की दूसरी विशेषता यह है कि बेगार अर्थात् बलात श्रम को वर्जित कर दिया गया है। यह एक ऐसी ज्यादती थी जिसका यहां के गरीब एक अरसे से शिकार हो रहे थे। अनुच्छेद 23 के द्वारा अब इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 31 से मैं सहमत नहीं हूं जिसके द्वारा सम्पत्तिवानों को सम्पत्ति के अवाप्तिकरण का अधिकार दिया गया है। मैं यह नहीं कहता कि देश के सभी लोगों को निर्धन बना दिया जाये पर जब आप समस्त राष्ट्र की समुन्नति के लिये किसी सम्पत्ति विशेष को उसके मालिक के हाथ से लेते हैं तो उसके लिए मुआवज़ा देने की व्यवस्था न रखनी चाहिये। अगर आप उसके लिए मुआवज़ा देना ही चाहते हैं तो उसकी भी एक हद होनी चाहिये। पर इस अनुच्छेद में इसके लिये कोई हद नहीं मुकर्रर की गई है। अगर पूंजीवादी शासन यहां अधिकार में आ जायेगा तो वह मुआवजे में जो भी चाहे दे सकता है, यहां तक कि जो सम्पत्ति शासन ने राष्ट्रीय काम के लिए ली है उसके मूल्य से कहीं अधिक रकम मुआवज़े में दे सकता है। यहां "ठीक-ठीक मुआवज़ा" (just compensation) देने की बात कही गई है पर जो रकम आपके हिसाब से ठीक से हो सकती है उसे हो सकता है कि दूसरे लोग ठीक न मानें। इस बात को

मैं जानता हूं कि इस संविधान से पूंजीवादी शासन के अस्तित्व में आने की कत्तई कोई संभावना नहीं है। जब सभी वयस्कों को मताधिकार दिया गया है तो यह अनिवार्य है कि देश की साधारण जनता का ही यहां शासन रहेगा। भले ही यह बात आज न हो पर वयस्क मताधिकार की व्यवस्था में आगे चलकर जनसाधारण का ही यहां शासन होगा। उन्हीं लोगों के हाथ में शासन प्रबंध रहेगा, यह लाजिमी है। फिर भी, इस बात की काफी गुंजाइश है कि यहां इस अन्तर्वत काल में सम्भवत: पूंजीवादी शासन अधिकारारूढ़ रहे। निदेशक सिद्धान्तों में यह बात जरूर कही गई है कि देश को तथा प्रान्तीय शासनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि श्रमजीवियों को अधिक से अधिक पारिश्रमिक मिले। पूंजीपतियों, उद्योगपतियों और बड़े-बड़े भूस्वामियों के शोषण से उन्हें बचाने की पर्याप्त व्यवस्था संविधान में की गई है और मेरा ख्याल है कि इस व्यवस्था से देश को अवश्य लाभ पहुंचेगा।

इस देश में निरक्षरों की संख्या बहुत अधिक है और संविधान ने अनुच्छेद 45 के द्वारा इस बात की व्यवस्था की है कि 14 वर्ष से नीचे की आयु का प्रत्येक बालक या बालिका को साक्षर अवश्य बना दिया जाये। 14 साल से कम उम्र वालों को सरकारी खर्च पर शिक्षा दी जायेगी। मजदूरों और गरीबों के लिए यह एक बड़ी अच्छी बात है। इस संविधान ने अनुसूचित जातियों को न केवल यही रक्षण दिया है कि विधान-मंडलों में उनके लिए स्थान सुरक्षित रहेंगे बल्कि उन्हें अन्य रक्षण भी इसने दिये हैं। नौकरियों में भी इनके लिए रक्षण की व्यवस्था की गई है और राज्य की नौकरियों में नियुक्ति करते समय इन लोगों का ध्यान रखा जायेगा अगर इनमें से काफी संख्या में योग्य आदमी इसके लिए आते हैं। मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद के द्वारा अनुसूचित जातियों को नौकरियों में अपना समुचित अंश पाने में पर्याप्त सहायता मिलेगी और अक्षरश: इस अनुच्छेद पर उसी भावना से अमल किया जायेगा जिससे यहां इसे स्थान दिया है। यह देखना कि इस पर ठीम-ठीक अमल हो कमोबेशी निर्भर करता है उन लोगों पर जिन्होंने संविधान की रचना की है। संविधान जिस भावना से बनाया गया है अगर उस पर उसी भावना से अमल नहीं किया जाता है तो वह एक निष्प्राण कोरा कागजी संविधान ही रह जायेगा और वह कभी अमल में न आ पायेगा। इसको अमली बनाने का का अधिकतर उन लोगों पर निर्भर करता है जो इसे कार्यान्वित करते हैं।

अब मैं राज्यपालों के निर्वाचन की बात को लेता हूं। जब हम लोग इस संविधान-सभा में पहुंचे नहीं थे उस समय सब जगह यही चर्चा थी कि निर्वाचित राज्यपाल होने चाहिएं। उस समय मैंने यह सोचा कि अगर राज्यपालों का निर्वाचन होता है तो अनुसूचित जातियों के आदमियों के राज्यपाल चुने जाने की सम्भावना बहुत ही कम रहेगी क्योंकि राज्यपाल का चुनाव सारे प्राप्त द्वारा होगा। प्रान्त के बहुसंख्यक लोगों के अनुसूचित जाति के पक्ष में होने पर भी हो सकता है कि कुछ लोग उनके खिलाफ हों—इसलिये नहीं कि वह उनको चाहते नहीं बल्कि इसलिये कि वह खुद राज्यपाल बनना चाहते हों—और उनका विरोध करें। किन्तु अब राष्ट्रपति को राज्यपालों को नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया है। इससे इसका पूरा भरोसा हो जाता है कि कुछ अनुसूचित जातियों के लोग भी अवश्य राज्यपाल बनाये जायेंगे।

अब मैं आता हूं लोक सेवा आयोग सम्बन्धी अनुच्छेद की ओर। मैं इस अनुच्छेद से सहमत नहीं हूं और खास करके उम्र वाले सवाल से। अनुच्छेद के अनुसार

[श्री एस. नागप्पा]

65 साल ही आयु के सदस्य आयोग में काम कर सकते हैं। किसी भी सरकारी नौकर के लिये इस उम्र तक नौकरी में रखना बहुत ज्यादा है। संघ लोक सेवा आयोग के बारे में यह बात खास तौर से लागू होती है। यदि वहां सदस्यगण 65 साल की आयु तक काम करते हैं तो वहां के काम में बड़ी ढिलाई आ जायेगी। आज भी अभ्यर्थी काम के सिलसिले में आयोग के सामने आते हैं और उनसे सब तरह की पूछताछ और परख कर लेने के बाद भी छः सात महीने तक उन्हें प्रतीक्षा में रखा जाता है और आयोग की ओर से उनको कोई जवाब नहीं मिलता है। एक लम्बे अरसे तक वह प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। ऐसा इस लिये होता है कि आयोग में बूढ़े लोग हैं जिन में चुस्ती नहीं है। न वह देश को समझ सकते हैं और उस गति से काम कर सकते हैं। जिससे उनको वहां करना चाहिये। इसका परिणाम यह होता है कि वहां काम में ढिलाई आ जाती है। इसलिये मैं अनुच्छेद से सहमत नहीं हूं जिसमें आयोग के सदस्यों को 60 साल की उम्र तक काम करने की बात कही गई है। फिर अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि आयोग के सदस्य के लिये यह जरूरी होगा कि वह दस साल तक सरकार की अधीनता में काम कर चुका हो। मैं आपको यह बता दूं कि ऐसी सूरत में प्रान्तीय आयोग या केन्द्रीय आयोग के लिये अनुसूचित जाति का सदस्य पाना पड़ा मुश्किल होगा। अच्छा होता कि इसके बारे में कुछ ऐसा उपबंध रखा जाता कि इन गरीब आदमियों के प्रतिनिधि भी केन्द्रीय और प्रान्तीय लोक सेवा आयोग में सदस्य के रूप में आ सकते।

जहां तक कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक करने का सवाल है, संविधान ने इस सिद्धान्त को स्वीकार अवश्य कर लिया है। अब तब कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के प्रकार्यों को पृथक् नहीं किया गया था और अक्सर एक ही प्राधिकारी दोनों कामों को करता था। इएस व्यवस्था से सबसे ज्यादा तकलीफ पहुंचती थी गरीबों को। अक्सर होता यह था कि जिस प्राधिकारी को दोनों प्रकार्यों के अधिकार दिये जाते थे वह इन अधिकारों का जनता की भलाई के लिये सदुपयोग न करके दुरुपयोग ही करते थे। मैं यह अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूं। संविधान ने अब प्रकार्य विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। कांग्रेस का भी यही नारा रहा है। वह भी इसी बात का आन्दोलन करती रही है कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सम्बन्धी शक्तियां एक प्राधिकारी को न सौंपी जायें। दोनों प्रकार्यों का भार पृथक पृथक प्राधिकारियों को देना चाहिये। मुझे इस बात का अभिमान है कि हमारे मद्रास प्रान्त ने इस सिद्धान्त पर अमल करना भी शुरू कर दिया। संयुक्त प्रान्त ने भी ऐसा ही किया है। आशा करता हूं कि शेष प्रान्त भी इस सिद्धान्त पर अमल करेंगे और यथाशीघ्र प्रकार्य-विभाजन कर देंगे ताकि गरीब जनता का भला हो सके जो शासन से न्याय पाने की आस रखती है।

अब मैं लेता हूं अनुच्छेद 335 को जिसमें अनुसूचित जातियों के दावों पर और खास करके नौकरियों के बारे में जो उनकी मांग है उन पर विचार किया गया है। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि सरकारी नौकरियों के लिये नियुक्ति करते समय उनके दावों को ध्यान में रखा जायेगा। ऐसा न होना चाहिये कि उनके

दावों पर केवल ध्यान ही दिया जाता रहे, बल्कि होना यह चाहिये कि उनकी मांगों को स्वीकार किया जाये। इस अनुच्छेद को मैं संविधान का एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद मानता हूं।

मुझे इस बात की खुशी है कि अनुच्छेद 391 द्वारा भाषा के आधार पर पृथक प्रान्त बनाने की व्यवस्था की गई है और किसी भी समय इस अनुच्छेद के अनुसार पृथक प्रान्त अस्तित्व में लाये जा सकते हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि कांग्रेस हाई कमान ने आन्ध्र प्रदेश को एक अलग प्रान्त बनाने की बात मान ली है और आशा है, अध्यक्ष महोदय, कि आप कृपा कर इस बात की चेष्टा करेंगे कि यथाशीघ्र यह प्रान्त अस्तित्व में आ जाये। आपने इसके लिये धार कमीशन को नियुक्त किया था। उस कमीशन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि आन्ध्र का एक भाग है जो रायल सीमा कहलाता है और एक भाग है जो सरकार कहलाता है। इन दोनों भागों के निवासियों में यह समझौता हो चुका है कि इनको प्रतिनिधान आबादी के आधार पर नहीं बल्कि क्षेत्र के आधार पर दिया जायेगा और हर जिले को बराबर प्रतिनिधान मिलना चाहिये पर अब यह हुआ है कि आबादी के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की बात हुई है और यह व्यवस्था रायल सीमा प्रदेश वासियों के हित के प्रतिकूल पड़ती है। किन्तु अब भी सरकार प्रदेश वाले अपनी विशालहृदयता का परिचय देते हुए यह कह सकते हैं कि उनको प्रतिनिधान मिलना चाहिये एक लाख पर एक के हिसाब से ओर रायलसीमा वालों को 75 हजार पर एक के हिसाब से। अगर वह इस बात को मान लें तो रायलसीमा वालों को बड़ी मदद मिल जायेगी। इसमें शक नहीं कि सभा हमारे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुई यद्यपि इस बारे में दोनों प्रदेशों के निवासियों में एक समझौता हो चुका था। फिर भी हम मसौदा समिति के निर्णय को मानने को तैयार हैं। मसौदा समिति हमारी बात से सहमत नहीं हुई इसलिये कि वह किसी प्रदेश को इस आधार पर कोई प्रतिनिधान नहीं देना चाहती थी कि वह प्रदेश विशेष पिछड़ा हुआ है। किन्तु जब इसने देश के कतिपय वर्गों के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था इसी आधार पर की है कि वह लोग पिछड़े हुए हैं तो मैं नहीं समझता कि किसी प्रदेश विशेष को यही सुविधा क्यों न दी जाये जब कि वह पिछड़ा हुआ है। फिर भी मसौदा समिति के निर्णय को हम स्वीकार कर चुके हैं जोकि यह व्यवस्था हमारे लिये बड़ी कठोर होगी। अब तो सरकार प्रदेश वासियों पर ही निर्भर करना होगा पर मैं आशा करता हूं कि वह लोग हमारे अधिकारों को मान कर अपनी उदारता का परिचय देंगे और हमारे साथ न्याय करेंगे।

भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद 120क इस सभा के लिए एक बड़ी कठिन समस्या रहा है। संयुक्त प्रान्त से आये मित्रों का रुख बड़ा कठोर रहा है और वह इस बात पर अड़े हुए थे कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाये और जिस दिन संविधान प्रवर्तन में आये उसी दिन से हिन्दी राज्य भाषा के रूप में प्रयुक्त की जाये। बड़ी कठिनाई के बाद दक्षिण भारत से आये सदस्य इन मित्रों को समझा पाये और इन्हें अपनी बात पर राजी किया। इन्होंने हमें 15 वर्ष की मुहलत देने की कृपा की। यह अवधि भी काफी नहीं है। मैं नहीं समझता कि दक्षिण भारत वाले 15 साल के अन्दर हिन्दी सीख जायेंगे और देवनागरी में औरों की तरह वह पढ़ने लिखने लग जायेंगे। लिपि के सम्बन्ध में हमें कोई विवाद नहीं है। किन्तु 15 साल के अन्दर हमारे प्रदेश वासी उस स्तर पर आ जायेंगे जिस पर संयुक्त प्रान्त वाले बन्धु उनको लाना चाहते हैं। इसका पता तो हमें बाद में ही चलेगा।

[श्री एस. नागप्पा]

जो भी हो उन्होंने इसके लिये कृपा कर 15 साल की अवधि हमें दे दी है। फिर यहां अंकों का प्रश्न भी एक जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। इस पर बहस मुबाहिसे में तीन दिन लग गये और तब कहीं जाकर हम इसके बारे में फैसला कर सके। यद्यपि इन अंकों को 'अन्तर्राष्ट्रीय अंक' ही कहते हैं पर अपने बन्धुओं को हमें यह समझाना पड़ा कि ये अंक पहले भारतीय अंक ही थे और अन्ततोगत्वा उन्होंने हमारी बात मान ली। हम दक्षिण भारत वासियों के लिए यह बड़े महत्व की बात है कि अंकों के बारे में हमारी बात यहां मान ली गई। इस भाषा के राज्य भाषा होने से हमें कठिनाई होगी क्योंकि इसे सीखना तो हमें पड़ेगा उत्तर भारत वासियों को नहीं। आशा करता हूं कि इस कथन के कारण हमारे उत्तर भारतवासी मित्र मुझे समझने में कोई गलती नहीं करेंगे।

मुझे इस बात की खुशी है श्रीमान कि संविधान-रचना का काम हम समाप्त कर चुके हैं। यह संविधान इसी 26 जनवरी से प्रवर्तन में आयेगा। मैं एक बार पुनः सदस्यों से इस बात की अपील करूंगा—क्योंकि अधिकतर इसे कार्यान्वित करने का काम यही लोग करेंगे—कि उन्हें सदा इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि इस पर उसी भावना से अमल किया जाये जिस भावना से इसकी रचना की गई है। ऐसा होने पर ही हमारा वह स्वप्न पूरा हो सकेगा जिसके लिये हमने यह संविधान बनाया है। ग्राम पंचायतों की स्थापना से, ग्रामोद्योग की स्थापना से तथा मद्यनिषेध को लागू करने से हमारे गरीब देशवासियों को बड़ी सहायता मिल सकेगी।

इस संविधान की एक अनूठी विशेषता यह है कि इस में कृषि-श्रमिकों के अधिकारों को मान्यता दी गई है। यद्यपि देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा अंश इन्हीं श्रमिकों से बना है और यहां की आबादी में इन्हीं का बाहुल्य है, यही लोग देश की अधिकांश सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं। पर इनके अधिकारों की उपेक्षा केवल इसलिए होती आई है कि यह लोग अपना संगठन करके आन्दोलन नहीं करते हैं और न हड़ताल करते हैं। देश की सम्पत्ति के वास्तविक उत्पादक यही लोग हैं फिर भी यहां इनकी उपेक्षा होती रही है। जब मैंने यहां इस आशय का संशोधन रखा था कि कृषि-श्रमिकों को भी श्रमिकों में शामिल किया जाये तो मसौदा समिति ने कृपा कर उसे स्वीकार कर लिया। यह बात मैं माननीय सदस्यों पर छोड़ता हूं कि इस संविधान को क्रियान्वित करते समय वह इस बात का ख्याल रखें कि कृषि-श्रमिकों के वाजिब दावों को मंजूर किया जाये। मैं इस संविधान का समर्थन करता हूं और माननीय मित्र श्री कामत की तरह नहीं उसका समर्थन करता हूं। उन्होंने तो इसका सीमित समर्थन ही किया है। मैं इसका पूर्ण समर्थन करता हूं बिना किसी शर्त को मन में रखे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, संविधान के तृतीय पठन पर यह गत कई दिनों से बहस मुबाहिसा चल रहा है और इसके हर छोटे-मोटे अनुच्छेद पर यहां आज तीन साल तक बहस हो चुकी है। ऐसी सूरत में यहां कोई नई बात कहना किसी के लिए भी मुश्किल है। फिर भी सभा के समक्ष मैं जो बोलने के लिए खड़ा हो रहा हूं वह इस लिए नहीं कि मैं कोई नई बात कहने जा रहा हूं बल्कि इसलिए ऐसे पुनीत अवसर पर मानव हृदय प्रसन्नता, कृतज्ञता और श्रद्धा से ओत प्रोत हो जाता है और अपनी भावनाओं

को व्यक्त करने की एक स्वाभाविक लालसा मनुष्य में उत्पन्न हो जाती है। माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने इस अवसर के भाषणों को शव-परीक्षण कहा है पर यह शव-परीक्षण नहीं है क्योंकि हम किसी ऐसी वस्तु का परीक्षण नहीं कर रहे हैं जो मृत है। इस अवसर पर हम यहां समवेत हुए हैं इस हेतु कि नवजात संविधान को हम अपनी शुभकामनाएं दें अपना आशीर्वाद दें क्योंकि हम यह चाहते हैं कि यह सफल हो, चिरस्थायी रहे और देशवासियों को सुखसमृद्धि दे सके।

इस अवसर पर सबके दिलों में सर्वोपरि यह भावना काम कर रही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें जिनके नेतृत्व और महान त्यागों के फलस्वरूप आज हम देश को बन्धनमुक्त और स्वाधीन कर सके हैं। इस पुनीत अवसर पर स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, गोखले, तिलक, मोती लाल नेहरू, पंडित मालवीय एवं अन्य दिवंगत देश भक्तों को तथा बहुतेरे अन्य ज्ञात और अज्ञात शहीदों को हम श्रद्धा से स्मरण करते हैं जिन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दे दी है। किन्तु देश की स्वतंत्रता के लिये अभी अभी सर्वाधिक बलिदान दिया है हमारे शरणार्थी भाइयों ने जिन्हें अपने घर द्वार को छोड़कर पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान से भारत आना पड़ा है। देश की स्वतंत्रता के लिये इन्हें अपना सब कुछ छोड़ना पड़ा है। यह हमारी चरम कृतघ्नता होगी अगर इस अवसर पर हम उनकी उपेक्षा करते हैं। न केवल इतना ही होना चाहिये कि हम इनकी उपेक्षा न करें बल्कि हमें इस बात की यथाशक्ति चेष्टा करनी चाहिये कि इन के दु:खों को दूर करने के लिये हमसे जो कुछ भी हो सके हम करें। यदि हम इनकी उपेक्षा करेंगे तो परमात्मा हमें कभी क्षमा नहीं कर सकता है। जब तक हम इस स्थिति में नहीं आ जाते हैं कि इनको यहां फिर से ठीक ठीक बसा दें, तब तक देश में हम ऐसा वातावरण नहीं पैदा कर सकते हैं जो संविधान को ठीक ठीक क्रियान्वित करने के लिए अपेक्षित है। मैं तो ऐसा महसूस करता हूं कि हमारी स्थिति इस समय उस मोर की तरह है जो अपने चमकीले सुन्दर पंखों को देखकर गर्व के मारे नाचने लगता है पर जब उसकी नज़र अपनी टांगों पर पड़ती है तो उनकी कुरूपता को देखकर वह रोने लगता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति पर हमें प्रसन्नता अवश्य होती है पर जब हमें देश विभाजन की याद आती है और विशेष करके अपने विस्थापित बन्धुओं के कष्टों का ख्याल आता है तो हम यह अनुभव करते हैं कि इस स्वतंत्रता का हम पूर्ण उपभोग नहीं कर सकते हैं। इसलिये मैं यह कहूंगा कि इन विस्थापित बन्धुओं को इस स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये जो महान बलिदान करने पड़े हैं उसका हमें ख्याल रखना चाहिये और इनके लिये हमसे जो भी हो सके करना चाहिये। इनके पुनर्वास के प्रश्न को हमें सर्वोपरि मानना चाहिये।

यहां हर वक्ता ने डॉ. अम्बेडकर एवं उनके साथियों की जो प्रशंसा की है उसके वे लोग सर्वथा अधिकारी हैं। जब मैं इस संविधान सभा में पहले पहल आया था उस समय डॉ. अम्बेडकर के प्रतिकूल मेरे मन में एक बहुमूल्य धारणा थी जिसका कारण यह था कि बहत दिन पहले, अनुसूचित जातियों के लिये ब्रिटिश हुकूमत द्वारा स्वीकृत पृथक निर्वाचन की व्यवस्था के विरोध में जब महात्मा जी अनशन कर रहे थे उस समय डॉ. अम्बेडकर के व्यवहार से मुझे बड़ा दुख पहुंचा

[श्री जसपतराय कपूर]

था। उस समय समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा था कि महात्मा जी ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये डॉ. अम्बेडकर को आमंत्रित किया था पर उन्होंने यह कहा था कि अपने कामों में व्यस्त रहने के कारण एक या दो दिन तक अभी नहीं जा सकते हैं। इस बात से मुझे बड़ा दु:ख पहुंचा था। मैं नहीं जानता कि यह बात कहां तक सही है। पर अगर यह सही भी हो तो इन तीन वर्षों के अन्दर इन्होंने जो महान उपयोगी और देश-भक्तिपूर्ण काम किया है उसके लिए उनके प्रति मेरे हृदय में प्रशंसा और स्नेह की भावना पैदा हो गई है। उनके सम्बन्ध में मुझे जो कुछ भी सन्देह और शंका थी वह सब उनके प्रथम भाषण से दूर हो गया जो इन्होंने सभा में दिया था और आज मैं यह कह सकता हूं कि मैं उनको सर्वोत्तम देशभक्तों में मानता हूं। मैंने यहां हमेशा यही देखा है कि इन्होंने हर प्रश्न पर निर्माणात्मक दृष्टिकोण से ही विचार किया है। कई मौकों पर जब यहां गतिरोध की स्थिति आ गई थी आपने ऐसे ऐसे सुझाव पेश किये जिनसे सारा मतभेद जाता रहा और गतिरोध न होने पाया। आपने यहां सदा अवसर के अनुरूप काम किया है। हां, केवल एक मौके पर आप ऐसा न कर पाये जब कि अनुसूचित जातियों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था को उठाने पर आप सहमत न हो सके। मैं यही चाहता हूं कि आप इस व्यवस्था को उठाने पर राजी हो गये होते और तब मैं यह कह सकता था कि हर मौके पर इन्होंने अवसर के अनुरूप काम किया। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अब मैं ऐसा नहीं कर सकता हूं। पर जो भी हो सिवाय इस एक अपवाद के आपने जो अन्य महान काम किये हैं उन्हें हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना होगा।

श्री बी.एन. राव, श्री मुकर्जी एवं उनके सहायकों ने जो उपयोगी काम इस सम्बन्ध में किये हैं उसके लिए इन लोगों को भी धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकता हूं। दुनिया के विभिन्न भागों में क्या संविधान और क्या उपबंध प्रयोग में हैं इसके अनेकानेक उदाहरण से आपने सदस्यों को सदा अवगत रखा जिससे उनको बड़ी मदद मिलती रही।

अब हमने अपना काम पूरा कर दिया है। पारस्परिक सद्भावना और सहमति से तथा एक दूसरे को समझते हुए और आपस की मुहब्बत से ही हम आप इस काम को इस खूबी के साथ खत्म कर पाये हैं। किन्तु, अध्यक्ष महोदय, यह सब हो सका है केवल इसलिए कि आपकी अध्यक्षता में यह किया गया है। आपने यहां अद्भुत और असीम धैर्य का परिचय दिया है। हमेशा सदस्यों को आपका सौजन्य और सहयोग मिलता रहा है। आपने हमें अपने विचारों को व्यक्त करने की पूरी आजादी दी है। आपने न केवल कार्यवाही का यहां संचालन ही किया है बल्कि जब भी आपने यह समझा कि सभा गलत निर्णय करने जा रही है, आपने हस्तक्षेप भी किया है और जब जब आपने हस्तक्षेप किया है बात सुधर गई है। यही बात है कि हम एक ऐसा संविधान बना पाये हैं जो सर्वथा हमारे योग्य है और जो सभी सदस्यों से तथा देश के प्रत्येक नागरिक से समर्थन पाने का अधिकारी है।

इस संविधान की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्राय: सभी खण्ड सर्वसम्मति से स्वीकृति हुए हैं और उन लोगों ने भी इस पर सहमति दी है जिन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यत्र तत्र के किसी खण्ड से हो सकता है किसी को मत भेद हो पर कुल मिलाकर यह कहना होगा कि संविधान को सभा के सभी

सदस्यों का समर्थन प्राप्त है। मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करता कि सेठ दामोदर स्वरूप, प्रो. शाह तथा श्री लक्ष्मी नारायण साहू जैसे कुछ कभी न राजी होने वाले सदस्य हैं जिनको इससे मतैक्य नहीं है। ये ऐसे लोग हैं जिनको कभी समझाया नहीं जा सकता है क्योंकि जो लोग न समझने पर ही तुले हैं उनको किसी तरह नहीं समझाया जा सकता है। इसलिये इनके विरोध का हमें विशेष ख्याल नहीं करना चाहिए। जहां तक सेठ दामोदर स्वरूप का सम्बन्ध है, उनका कहना है कि चूंकि यह सभा वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है इसलिए यह देश का प्रतिनिधित्व करने वाला निकाय नहीं मानी जा सकती है। उनके इस मन्तव्य से हम भले ही सहमत न हों पर जहां तक उनका निजी सम्बन्ध है हमें यह मानना ही होगा और उनके मन्तव्य के अनुसार ही हमें मानना होगा कि वह यहां किसी निकाय या संस्था का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। मेरा ख्याल है कि वह, इस विश्वास से अपने को सुरक्षित समझ कर ही कि वह किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, यहां इस तरह की गैर जिम्मेदारी की बातें कर रहे हैं क्योंकि वह समझते हैं कि जब वह किसी के प्रतिनिधि रूप में नहीं हैं तो जो चाहें यहां मजे में कह सकते हैं।

यद्यपि ऐसे विरोधी आलोचकों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है पर मैं यह अवश्य कहूंगा कि मुझे इस बात से बड़ा शोक और आश्चर्य हुआ है—और मेरा विश्वास है कि और कई लोगों के साथ भी यही बात होगी—कि इन विरोधी आलोचकों की जमात में अभी अभी आने वालों में संयुक्त प्रान्त के शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द जैसे व्यक्ति भी हैं। गत शनिवार को आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर छात्रों के समक्ष बोलते हुए आपने संविधान की बड़ी निन्दा की और इसे सर्वथा व्यर्थ बतलाया। उनके पास ही बैठा हुआ मैं उनकी वक्तृता सुन रहा था और मुझे आश्चर्य हो रहा था इस बात पर कि ऐसे अवसर पर उन्हें छात्रों के सामने यह सब बातें कहनी चाहिये या उन्हें इस मौके पर उनको यह बताना चाहिये था कि दुनियां में जब वह प्रविष्ट होने जा रहे हैं तो उनका कर्तव्य क्या होना चाहिये। उन्होंने संविधान का सर्वथा उपहास किया और शायद स्नातकों से भी यही आशा की कि वह भी उसका उपहास करेंगे। उनके जैसे जिम्मेदार और योग्य व्यक्ति से तो हम यह आशा करेंगे कि वह छात्रों को यह सलाह देगा कि उन्हें संविधान को बनाने का प्रयास करना चाहिये। ऐसे मौके पर तो हमें स्नातकों को सुन्दर सलाह देनी चाहिये। पर आपने बिल्कुल उलटा ही किया।

आपकी अनुमति हो तो मैं यहां उन तीन चार बातों का उल्लेख करूं जो उन्होंने भाषण में कही थीं। आपने यह फरमाया था:—

'मेरा यह विश्वास है कि यह संविधान वस्तुत: हमारे योग्य नहीं है।'

आगे चल कर आपने इसे "एक वृहत् ग्रंथ" बतलाया। आपने इसे इतना भारी बतलाया कि स्वयं उनके कंधे इसके भार का वहन नहीं कर सकते हैं। आपने यह नहीं बतलाया कि इसका ठीक ठीक वजन क्या है और न यही बतलाया कि कितना भार उनके कंधे वहन कर सकते हैं। आगे चल कर आपने फरमाया:—

"संविधान एक पवित्र वस्तु है जिससे भावी पीढ़ियों को प्रेरणा प्राप्त होती है। महत्वपूर्ण राज्यों के लिये यह रचयिताओं के सजीव विश्वास की, जीवन सम्बन्धी

[श्री जसपत राय कपूर]

दर्शन की एक प्रतिमा होती है। सोवियत रूस के संविधान को देखने से ही आप को हमारा यह कथन समझ में आ जायेगा।"

उनकी इस बात से हमें इस बात का आभास मिल जाता है कि उनके मन में क्या बात है और उनकी सहानुभूति किस दिशा में है। आगे चल कर आपने यह फरमाया:—

"जब हम इस कसौटी पर इसे परखते हैं तो इसे सर्वथा व्यर्थ पाते हैं। इस पर भारतीय संस्कृति की कोई छाप नहीं पड़ पाई है और न यह उस गांधीवाद से ही अनुप्राणित है जिसकी देश विदेश में हम इतनी दुहाई देते हैं। यह एक साधारण अनिधियम जितना महत्व रखता है जैसे कि 'मोटर वेहिकल ऐक्ट' है"।

इस पवित्र लेख्य का कितना हीन और कुत्सित वर्णन आपने किया है। इतने से सन्तुष्ट न होकर आपने अन्ततोगत्वा यह कहा:—

"इसमें अन्य और कई दोष हैं। पर मैं यहां केवल एक दोष का ही उल्लेख करूंगा। सारी शक्तियों को केन्द्र के साथ में रखने कोशिश की गई है और यह बात छिपी नहीं रह सकी है। प्रान्तीय शासनों की स्थिति संविधान में यही रह गई कि वह केन्द्र के एजेंट मात्र रह गये हैं। यह एक बहुत बुरी बात है। यहां देश में पहले भी कई बार समस्त देश को एक केन्द्र के अधीन रखने के प्रयोग का परीक्षण किया जा चुका है। इन परीक्षणों का परिणाम क्या रहा है इसे इतिहास के छात्र अच्छी तरह जानते हैं।"

मालूम नहीं कौन सा इतिहास आपने पढ़ रखा है। यह वह इतिहास नहीं मालूम पड़ता है जिसे हम लोगों ने पढ़ा है। इतिहास तो यही प्रमाणित करता है कि जब भी यहां की शासन व्यवस्था एक केन्द्राधीन नहीं रही है विदेशियों ने आक्रमण करके समस्त देश को ही रौंद डाला है। ऐसा मालूम पड़ता है। कि जो इतिहास श्री सम्पूर्णानन्दजी ने पढ़ रखा है वह ऐसा इतिहास है जिससे हममें से कोई भी परिचित नहीं है।

संविधान के विरुद्ध एक आपत्ति यह भी की जाती है कि इसमें गांधीवाद को स्थान नहीं दिया गया है। श्री सम्पूर्णानन्द जी को तथा अन्य कई मित्रों को भी, जिनकी संख्या कुछ ज्यादा नहीं है, इसकी शिकायत है। किन्तु उनकी यह शिकायत बिल्कुल गलत है। मूलाधिकारों के सम्बन्ध में तथा निदेशक सिद्धान्तों के बारे में जो अध्याय संविधान में रखे गये हैं वह इन शिकायतों को बिलकुल गलत साबित कर देते हैं। आखिर गांधी जी क्या चाहते थे? उनका परम प्रिय कार्य था अस्पृश्यता को दूर करना। क्या संविधान में यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि अस्पृश्यता अब समाप्त की जाती है और इस प्रथा को बरतना विधि के अनुसार दण्डनीय समझा जायेगा?

दूसरी बात जो गांधी जी चाहते थे वह यह थी कि शक्ति जनता को, देश के किसानों और मजदूरों को प्राप्त रहनी चाहिये। क्या संविधान में इसकी व्यवस्था

नहीं की गई है? वयस्क मताधिकार का आखिर मतलब क्या है? वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करके हमने बड़े साहस का काम किया है। इस व्यवस्था का प्रयोग करने में हम बहुत बड़ी जोखिम उठाने जा रहे हैं। पर महात्मा जी की इच्छा को पूरा करने के लिए हम यह जोखिम उठाने को तैयार हैं और मुझे विश्वास है कि हमें इस व्यवस्था के प्रयोग के लिये पछताना नहीं पड़ेगा।

तीसरी बात गांधी जी यह चाहते थे कि राज्य सर्वथा असाम्प्रदायिक हो और धर्म से उसका कोई वास्ता न हो। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति से हो और नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धर्माचरण की स्वतन्त्रता रहे और सभी धर्मों के अनुयायियों को राज्य तथा विधि की दृष्टि में समता प्राप्त रहे।

संविधान में इन सब बातों की व्यवस्था की गई है। इसमें नागरिकों को धर्म के बारे में पूरी स्वतन्त्रता दी गई है और इस बात के लिये भी स्पष्ट उपबन्ध रख दिया गया है कि उन शिक्षण-संस्थाओं में जिनको सरकार से कोई भी सहायता मिलती होगी, धर्म की शिक्षा अनिवार्य नहीं रहेगी।

गांधी जी को खास तौर पर फिक्र इस बात की थी, यहां ग्राम-पंचायतों की स्थापना हो और इनको स्वशासन का कुछ हद तक अधिकार प्राप्त रहे। संविधान में, अनुच्छेद 40 द्वारा ग्राम पंचायतों की व्यवस्था भी कर दी गई है इस अनुच्छेद में यह कहा गया है:—

> "राज्य ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिये अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिय आवश्यक हों।"

इस तरह ग्राम पंचायतों के लिये संविधान में एक स्पष्ट उपबन्ध रख दिया गया है। जो लोग यह शिकायत करते हैं कि प्रशासन के सारे अधिकार केन्द्र में निहित किये गये हैं उनको संविधान के इस अनुच्छेद 40 को पढ़ लेना चाहिये। यह सच है कि यह अनुच्छेद निदेशक सिद्धान्तों में रखा गया है पर और इसे रखा ही कहां जा सकता है? और वर्तमान स्थिति में इससे अधिक और किया ही क्या जा सकता है? केवल लिख देने या जादू की घड़ी घुमा देने से तो ग्राम पंचायतों की स्थापना नहीं हो जायेगी। हम इसके लिये यही कर सकते थे कि इस दिशा में अग्रसर होने के अपने दृढ़ निश्चय को संविधान में लिपिबद्ध कर देते और यह काम हमने किया है।

दूसरी बात गांधी जी यह चाहते थे कि यहां ग्रामोद्योगों का प्रसार किया जाये। इसके लिये भी अनुच्छेद 43 के द्वारा संविधान में व्यवस्था की गई है।

फिर गांधी जी के कार्यक्रम में मद्यनिषेध को जरूरी बताया गया था। इसके लिये भी अनुच्छेद 47 के रूप में एक सुनिश्चित उपबन्ध संविधान में रखा गया है जिसे निदेशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में स्थान दिया गया है।

जो लोग यह कहते हैं कि यह संविधान तो अन्य संविधानों की नकल मात्र है वह भला यह तो बताने की कृपा करें कि दुनियां में और कौन संविधान है जिसमें, राज्य के निदेशक सिद्धान्तों में मद्यनिषेध और ग्रामोद्योगों का उल्लेख हुआ है। फिर वह यह कैसे कहते हैं कि इस संविधान पर गांधीवाद की छाप नहीं है?

[श्री जसपतराय कपूर]

मैं यहां दो ही और बातों की चर्चा करूंगा। एक तो राष्ट्र भाषा सम्बन्धी प्रश्न की और दूसरा इस मसले की कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमारी नीति क्या होगी? जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय मसलों का सम्बन्ध है हमने अनुच्छेद 51 में यह साफ साफ कह दिया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्व सम्बन्धों को बनाये रखने का, संघटित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा। मुझे विश्वास है अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में गांधी जी भी यही नीति पसन्द करते। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के बारे में हमारी जो नीति है वह सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों से, जिनकी गांधी जी बड़ी हिमायत करते थे, सर्वथा संगत है।

अब अन्त में मैं आता हूं राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रश्न पर। इस सम्बन्ध में हमने जो पथ अपनाया है उसी को गांधी जी भी अपनाने को कहते। भाषा सम्बन्धी प्रश्न पर आज जो मतभेद है उसे अच्छी तरह जानते हुए भी मैं यह राय जाहिर कर रहा हूं। भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद को हमने अब स्वीकार कर लिया है और जिस रूप में इसे स्वीकार किया है वह ऐसा है जिसे, मेरी समझ से, गांधी जी भी पसन्द करते। हां विस्तार की दो एक छोटी मोटी बातों के बारे में उनको मतभेद हो सकता था। हमने राष्ट्रभाषा बनाया है हिन्दी को और ऐसी हिन्दी को जो देश की विभिन्न भाषाओं से शब्दों को लेकर निर्मित रहेगी। हां यह बात जरूर है कि गांधी जी अंग्रेजी के आधिपत्य को नहीं पसन्द करते थे ओर इस बारे में हमें यह स्वीकार करना होगा श्रीमान कि पूर्णतः उनकी इच्छा को सन्तुष्ट नहीं कर पाये हैं। हमारे मित्र और जिम्मेदार सदस्य गण जो हमेशा गांधी जी की दुहाई दिया करते हैं यह नहीं चाहते थे कि हम अंग्रेज़ी को एक अल्प अवधि के अन्दर ही यहां से दूर कर दें। उन्होंने इस बात पर जोर दिया और आग्रह किया कि अभी पन्द्रह साल तक अंग्रेजी रखी ही जाये। गांधी जी इस बात को कभी न पसन्द करते कि यहां पन्द्रह साल तक अंग्रेजी का प्राधान्य बना रहे और न अंग्रेज़ी संख्या को अपनाना ही वह पसन्द करते। मुझे इसमें रंच मात्र भी शक नहीं है और न कोई मित्र ईमानदारी से शक कर सकता है कि गांधी जी की यही राय होती जो मैंने कही है। किन्तु जो लोग गांधी जी की नीति और सिद्धान्तों पर चलने का दूसरों को उपदेश देते हैं वही गला फाड़कर आज इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि अंग्रेज़ी को अभी पन्द्रह साल तक बना रहने दिया जाये और अंग्रेज़ी संख्या को अपनाया जाये। हमने अंग्रेज़ी संख्या को रखना स्वीकार कर लिया है।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** वह बिलकुल भारतीय संख्यांक हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** माननीय मित्र का कहना है कि वह भारतीय संख्यांक हैं। मैं जानता हूं कि श्री भारतीय जी को आज अकस्मात् यह ज्ञानोदय हुआ है और कुछ अन्य मित्र भी यहां यह अनुभव करने लगे हैं कि श्री भारती के इस अनुसंधान को कि ये संख्यांक अंग्रेज़ी संख्यांक नहीं हैं बल्कि पहले भारत में प्रयुक्त यही होते थे, स्वीकार कर लेना ही उनके लिये बुद्धिमत्ता की बात होगी। और फिर अद्भुत बात यह है कि इन संख्याकों को अन्तर्राष्ट्रीय संख्यांक का नाम दिया गया है। इस कहानी के सम्बन्ध में मुझे और कुछ नहीं कहना है। यह कहानी

आत्म प्रवंचना की एक दुखद कहानी है। इसकी चर्चा तो मैंने केवल इस आपत्ति के प्रसंग में कर दी है जो श्री सम्पूर्णानन्द तथा उनकी विचारधारा के लोग संविधान के विरुद्ध करते हैं, कि इस संविधान पर गांधीवाद की छाप नहीं पड़ी है।

फिर, श्री सम्पूर्णानन्द तथा सेठ दामोदर स्वरूप जैसे कुछ अन्य व्यक्तियों का यह भी कहना है कि इस संविधान में समाजवादी सिद्धान्तों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इसके जवाब में मैं उनको यह कहना चाहता हूं कि संविधान के अनुच्छेद 39 और 41 को वह पढ़ें। इन अनुच्छेदों द्वारा देश के भौतिक साधनों पर सरकार के स्वामित्व की और सम्पत्ति के समवितरण की व्यवस्था की गई है। एक अनुच्छेद में यह भी कहा गया है एक से काम के लिये सबको समान पारिश्रमिक दिया जायेगा।

ये अनुच्छेद तथा इसी तरह के अन्य अनुच्छेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजवादी सिद्धान्तों को पूरा पूरा इसमें स्थान दिया गया है। हां यह बात जरूर है कि हमने इन बातों को निदेशक सिद्धान्तों में स्थान दिया है और इससे ज्यादा हम कुछ कर ही नहीं सकते हैं।

संविधान की दो प्रमुख विशेषतायें यह हैं कि देश के ऐक्य पर तथा केन्द्र को मजबूत बनाने पर इसमें पूरा ध्यान दिया गया है और इन दोनों बातों के लिये किसी को भी कोई शिकायत नहीं हो सकती है। हमारे लिये यह परम आवश्यक है कि केन्द्रीय शासन बहुत शक्तिशाली और सुदृढ़ हो। और हमने केन्द्रीय शासन को उसी सीमा तक प्रबल बनाने की कोशिश की है जहां तक कि प्रान्तीय स्वशासन का ख्याल रखते हुए ऐसा करना संगत हो सकता है। हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो गये हैं। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, हमने ग्राम पंचायतों की स्थापना की भी व्यवस्था की है और इन पंचायतों को स्वशासन का बहुत कुछ अधिकार दिया है। इसलिये हमने केन्द्र को प्रबल जरूर बनाया है पर उसी हद तक जहां तक कि प्रान्तीय स्वशासन और ग्राम-स्वशासन के ख्याल से केन्द्र को मजबूत बनाना संगत हो सकता है। जहां तक देश के ऐक्य का सम्बन्ध है हमने काफी बुद्धिमानी से काम लिया है और कुछ निश्चित सिद्धान्तों को संविधान में रखा है। मेरा ख्याल यह है कि इन सिद्धान्तों को रखने पर किसी को कोई खेद नहीं होना चाहिये। हां उन लोगों को अवश्य खेद होगा जो यहां देश में अव्यवस्था और अशांति पैदा करना चाहते हैं और जिनकी सहानुभूति देश के बाहर के किसी अन्य राज्य के साथ है।

हमने इस बात का भी उपबन्ध किया है कि यहां पैदा होने वाला और देश के किसी भाग में रहने वाला कोई व्यक्ति देश के किसी भाग में सरकारी काम में लगाया जा सकता है। जिस अनुच्छेद में यह उपबन्ध रखा गया है उसे मैं महत्वपूर्ण अनुच्छेद मानता हूं। हमने संसद को यह अधिकार दिया है कि कतिपय नियुक्तियों के बारे में आवास सम्बन्धी क्या अर्हतायें अपेक्षित होंगी इसके लिये वह विधि बना सकती है। पर मुझे विश्वास है कि इस अधिकार का प्रयोग वह खूब सोच समझ कर सावधानी के साथ ही करेगी।

फिर हम देश भर के लिये एक सी व्यवहार प्रक्रिया संहिता रखने जा रहे हैं। यह व्यवस्था भी देश ऐक्य में बड़ी सहायक होगी। फिर संविधान में हमने यह भी कहा है कि देशी रियासतों को वही दर्जा हासिल रहेगा जो प्रान्त कहे जाने वाले राज्यों का होगा। दो वर्ष पहले हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर

[श्री जसपतराय कपूर]

सकते थे कि देशी रियासतों का पृथक अस्तित्व ही न रह जायेगा और वह सब शेष भारत में मिल जायेंगी और समूचे देश के लिये एक संविधान लागू होगा। किन्तु आज यह बात पूरी हो गई है। यह एक ऐसी बात है जिस पर हम गर्व और प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। मेरी यही इच्छा है कि कश्मीर को भी वही स्थिति दी गई होती जो अन्य देशी राज्यों को दी गई है। कितु दुर्भाग्य की बात है, हमें भले ही इससे असन्तोष और दुख क्यों न हो, कि ऐसा नहीं किया जायेगा। यह एक बड़ा नाजुक मसला है इसलिये इससे अधिक इस बारे में और कुछ नहीं कह सकता हूं।

एक बहुत बड़ी अच्छी बात अनुच्छेद 25 (2) में आखिरी समय में जोड़ दी गई है। यहां हिन्दुओं में बौद्धों को भी शामिल कर लिया गया है। यह परिवर्तन अभी आखिर में किया गया है। इस उपबन्ध की मुझे खास तौर पर खुशी है।

अध्यक्ष महोदय ने घंटी बजा दी है और मेरा समय समाप्त हो चुका है। इसलिये अब मैं केवल उन दो तीन बातों की ही यहां चर्चा करूंगा जिनके बारे में मुझे कुछ कहना है। किन्तु यह खुशी की ही बात है कि मेरा समय खतम हो चुका है क्योंकि मैं संविधान की खामियों का ज़िक्र करने जा रहा था और समय के समाप्त हो जाने से मैं ऐसा कर नहीं सकता हूं। संविधान की खामियों को बताने का और उसकी आलोचना का समय बीत चुका है। अब तो समय इस बात का आ गया है कि हम देश में संविधान के प्रति आदर और श्रद्धा की भावना पैदा करें। जैसा कि माननीय मित्र श्री सन्तानम ने कहा है हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि देशवासी संविधान के विभिन्न उपबन्धों को ठीक ठीक समझें। हमें संविधान के प्रति देश में आदर और श्रद्धा की भावना पैदा करनी होगी ताकि सभी यथाशक्ति इस पर अमल करने की और इसे सफल बनाने की कोशिश करें। ऐसा करके ही हम देश में सुख, शान्ति सम्पन्नता ला सकते हैं।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज हम अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई के बाद जो नये राष्ट्र के निर्माण के लिये विधान बनाने चले थे उसकी यात्रा की अन्तिम मंजिल पर पहुंच गये हैं, और इस देश के वे लोग जो यहां जनता के प्रतिनिधि के रूप में बैठे हैं महान भाग्यशाली हैं कि उन्होंने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ा और वह दिन देखा जब कि अपना विधान अपने हाथों बना रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे राम के राज्याभिषेक के समय जब उनको राज्य मिला तो जो बानर भालू लंका विजय में उनके साथ थे उन्हीं के साथ अयोध्या आये। उपहार में उन्होंने उनको मणियों की माला दी। जिस तरह से उस मणि माला को लेकर वानर भालुओं ने अपने को सनाथ समझा था, आज भारत की वह जनता जिसने अपने त्याग और उत्सर्ग से कांग्रेस का साथ देकर, उन महान नेताओं का साथ देकर, जिनके पुरुषार्थ का फल है कि आज भारत स्वतन्त्र होकर यह विधान बनाने यहां बैठा है, उनको इस योग्य बनाया और देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उनका साथ दिया, ठीक उसी तरह जिस तरह वानर भालुओं ने लंका से माता सीता को लाने में राम का साथ दिया था। आज उपहार स्वरूप मणियों की माला के रूप में यह विशालकाय स्वतन्त्रता का संविधान इस विधान निर्मात्री समिति के विद्वान सदस्यों द्वारा प्राप्त कर रही है। मुझ को ऐसा लगता है कि यह सचमुच मणियों की माला है। हमारा विधान इस माने में और भी ज्यादा अच्छा है कि उसमें विपक्षियों की दृष्टि से भी देखें और

अनेक दोष देखें तो भी इतनी बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि इतना बड़ा देश जो इतनी रियासतों में बंटा हुआ था, जो इतने भीतरी भेदों के कारण छिन्न भिन्न हो रहा था, उसको एकता के सूत्र में बांधने का सफल प्रयन्त जो इस विधान के द्वारा हुआ है उसका उदाहरण मिलना कठिन होगा। यह एक अपूर्व कृति है। बड़े साहस से, बड़े परिश्रम से बड़ी, सद्भावना से हमने इसका निर्माण किया है। प्रत्येक वर्ग ने अपनी अपनी ओर से कुछ त्याग किया है और उसका फल है आज का हमारा यह संविधान।

अंग्रेज़ यहां से चले थे तो जाने से पहले वह तमाम राजाओं को मुक्त कर गये थे। उनके साथ अपनी संधियों को भंग कर गये थे और उनको स्वतन्त्र छोड़ गये थे। ऐसा प्रलोभन था कि वह सब राजे महाराजे अपनी जगह स्थिर होकर खड़े हो जाते और इतनी मूर्तियां होतीं, इतनी लड़ाई के लिये इतने फ्रंट खुल जाते कि जिनका हल करना असम्भव हो जाता। किन्तु उन राजाओं की सद्बुद्धि और हमारे महापुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की योग्यता तथा हमारे नेताओं के बुद्धिकौशल ने उन तमाम को एक सूत्र में बांध कर एक महान भारत का निर्माण किया है। भाषा के सम्बन्ध में इतनी प्रान्तीय भाषायें इस देश में हैं कि हर एक दस कोस पर नई भाषा है "दस बीघे पर पानी बदले और दसे कोस पर वाणी।" हर दस बीघे पर पानी बदलता है और हर दस कोस के फासले पर भाषा बदलती है। तो ऐसे विशाल देश की भाषा और उस भाषा की एक लिपि का स्वीकार होना यह इस राष्ट्र के, महान राष्ट्र के विभिन्न अंगों की उदारता है कि जिन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को समष्टि के हित के सामने रख दिया और उस पर बलिदान कर दिया। इसके लिये नेताओं की बुद्धिमत्ता तथा भिन्न भिन्न भाषा भाषी प्रान्तों के भाइयों की उदारता सराही जायेगी। इस दृष्टि से देखें कि हमने एक राष्ट्र का निर्माण किया, एक भाषा का निर्माण किया, रियासतों और विविध खंडों को तोड़कर उनको भारत के साथ मिला दिया तो यह स्वयं इस विधान की एक बड़ी विशेषता है और इसको पूरा करने में अनथक परिश्रम करना पड़ा है। और इसी दृष्टि से मैं कहता हूं कि यह मणियों की माला है जो भारतीय जनता को हमारे राष्ट्र के संचालक भेंट कर रहे हैं। मणियों की माला जब श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान को अर्पित की तो भगवान की उस माला को लेकर हनुमान ने देखना शुरू किया कि उसमें कहीं राम नाम भी है या नहीं। राम नाम न पाकर हनुमान उस मणियों की माला को फेंक देते हैं। मुझ को ऐसा लगता है कि भारत की वह जनता जिसे हमने विधान रूपी यह माला दी है उसे पाकर हर्षित होगी और भगवान को धन्यवाद देकर उसको अपने गले में डाल कर गौरव अनुभव करेगी। जनता में जो हनुमान होंगे रामभक्त होंगे वह इसमें राम नाम अंकित न पाकर उनको इस मणियों की माला में दोष नज़र आयेगा और वह उसको अपनाने से सकुचायेंगे। वह दोष क्या है? उसकी ओर मैं ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि हमने प्रीएम्बुल (भूमिका अथवा उपोद्घात) में बहुत सुन्दर और ललित भाषा का प्रयोग किया है, उसकी शब्दावलि बहुत ललित है किन्तु हनुमान सरीखे भक्तों को ऐसा लगता है कि उसमें राम नाम नहीं है। इस विधान में हम जब सारा पढ़ते हैं तो कहीं भी उन वीरों का हमें उल्लेख नहीं मिलता जिनके कि बलिदानों के फलस्वरूप हमको यह विधान और यह स्वतन्त्र राष्ट्र मिला है। कौन सा इसके अलावा दूसरा अवसर होगा जब हम स्वतन्त्रता में बलिदान होने वालों

[श्री अलगू राय शास्त्री]

को स्मरण करते, तारीख लिखने वाले लिखेंगे कि संविधान में उनका उल्लेख नहीं है, राष्ट्रपिता का उल्लेख नहीं है। हमने अहंकार के साथ यह कहा है कि हम अपने को यह संविधान दे रहे हैं, भारत की जनता को इससे अहंकार का भास यहां हो रहा है उसी भावना तो यह रही है कि मैंने यह सब किया ऐसा नहीं समझना चाहिये यह अहंकार की भावना है। ईश्वर को नमस्कार करके ही हमें इसको प्रारम्भ करना चाहिये था। दो ही शब्द होते। इन वीर आत्माओं को स्मरण करके, नमस्कार करके, श्रद्धा के साथ जिनके सत्य प्रयत्नों से बलिदानों से, बापू हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आशीर्वाद से हम आज यह दिन देखते हैं, उनका इसमें स्थान होता तो उनके उल्लेख से मणियों की माला वैसी ही रहती, मणियों की स्वन्त्रता, सुन्दरता, वैसी ही रहती इसमें राम नाम अंकित हो जाता। ऐसा न होने से जो राज्यभक्त हैं, देशभक्त हैं तथा ईश्वर भक्त हैं उनको इनका अभाव खटकता है।

इसके बाद जब हम प्रीएम्बुल (Preamble) से चल कर देश के नाम पर आते हैं तो पहले खंड में भारत एक राष्ट्र होगा, उसके नाम का प्रश्न आता है, मुझे अफसोस है कि हम इस में गुलामी की दासता की मनोवृत्ति से ऊपर नहीं उठ सके। हमने खोल कर यह नहीं कहा कि हमारे देश का नाम क्या होगा। संसार के किसी राष्ट्र का नाम ऐसा नहीं है, "इंडिया दैट इज़ भारत" यह क्या नाम है? हमने अपने देश का नाम भी ठीक तरह से नहीं दिया। यह मैं समझता हूं कि इतनी सुन्दर पदावलि के होते हुए भी, इस नाम का ठीक ठीक उदारतापूर्वक प्रयोग न करने से राम नाम शून्य हो गया है और हनुमान को ग्राह्य नहीं है। हम उसके बाद आ जाते हैं सिटीज़नशिप के क्लाजेज़ पर—नागरिकता से सम्बन्धित धाराओं पर—इसमें कहा गया है कि फलां तारीख को आये हुए पाकिस्तान से जो यहां आ गये हैं, वह भारत के सिटीजन अथवा नागरिक होंगे। हमको कहना चाहिये था कि वे हिन्दू तथा सिख जो स्वेच्छापूर्वक विदेशी नागरिकता न ले लिये हों चाहे जब आवें वे इस देश के नागरिक होंगे। इस तरह के सिटीज़न शिप के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रखना चाहिये था कि भारत के विभाजन के जो कारण हुए, जो यहां से भाग कर चले गये हों, और इस तरह से न जाने क्या क्या भावनायें लेकर यहां फिर से बसना चाहते हैं, उनको सिटीजनशिप का राईट मिलने में काफी प्रतिबन्ध होना चाहिये था, इसकी आवश्यकता थी। इसकी भी कमी नज़र आती है। और इसलिये वह लोग जो देशभक्ति की भावना रखते हैं, वह इससे संतुष्ट नहीं हो सकते। उसके बाद हम धीरे-धीरे करके फंडामेन्टल राईट्स पर आते हैं। मूलाधिकार की बात पर आते हैं। उसमें मनुष्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का पूरा निर्णय किया गया है। प्रत्येक नागरिक को पूरा अधिकार दिया गया है, उसके स्वत्व की रक्षा का वचन दिया गया है। मगर हमने राष्ट्र को बलिष्ठ बनाने की ओर नागरिकों का क्या उत्तरदायित्व है, इसकी तरफ उनका ध्यान नहीं दिलाया है। हम उत्सुक हैं कि माईनारेटीज़ कहलाने वालों को यह संरक्षण दें और वह संरक्षण दें कि इन संरक्षणों को जरूरत है। परन्तु उनका राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य है, किस तरह वह राष्ट्र की सेवा करें, विदेशी भावना उनमें न आने पावे और दूसरे राष्ट्रों के प्रति ऐसी भावना न बढ़ने पाये, जो अपने देश के लिये घातक सिद्ध हो, उसके लिये जितना प्रतिबन्ध रखना चाहिये तथा उतना नहीं रखा गया है। हमने शिक्षालयों को रिलीजस (धार्मिक) शिक्षा से वंचित किया है जो सरकार

की सहायता से चलने वाली संस्थायें हैं उनमें धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, हमने यह कह दिया। मेरी समझ में यह उचित नहीं किया गया। महात्मा गांधी प्रेयर मीटिंग (प्रार्थना सभा) में रोज़ "रघुपति राघव राजा राम" गाते थे। महात्मा गांधी गीता, रामायण का पाठ करते थे। अगर ये और दूसरे धर्म ग्रन्थ नहीं पढ़े जायेंगे, तो हमारी नागरिकता का रूप कैसा बनेगा? और अगर हम धर्म को छोड़ देते हैं तो हम आचार विचार की मर्यादा कहां से स्थापित करेंगे? यह बड़ा दोष मौलिक अधिकारों में नज़र आता है। आगे बढ़कर जब हम वहां पहुंचते हैं जो डाइरेक्टिव प्रिंसपुल्स के नाम से इस विधान की धारा में हैं, जिसमें हमारे राष्ट्र के आदर्श तथा उनके अधिकार दिये गये हैं, उनमें जाते हैं, तो वहां अच्छी खासी पदावलि है, ललित, बहुत सुन्दर गौरवपूर्ण वह भाग है, किन्तु उसमें भी राष्ट्र ने यह जिम्मेदारी खुले तौर पर नहीं ली है कि हम अन्न, वस्त्र तथा दूसरी आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिये राष्ट्र को आश्वासन देते हैं। हमने यह अवश्य कहा है कि हम यथासाध्य इसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न करेंगे। विधान को देते वक्त प्रीएम्बुल (भूमिका) में हम देते हैं कि वहां पर हमने अहंकार से काम लिया है, किन्तु जहां पर शासन की सत्ता अपने हाथ में लेते हैं और जहां हमको उच्च स्वर से गर्व से तथा अहंकार से कहना चाहिये था कि प्रत्येक नागरिक यह समझ ले कि हम उसको भोजन, वस्त्र तथा निवास की सुविधा देंगे, यह हमारा उत्तरदायित्व है। "अन्नादेः समविभागः प्रजानां यथार्हतः" प्रजा मांग को उसकी आवश्यकता के अनुसार अन्नादि जीवन की अनिवार्य सामग्री का देना राज्य का एक मात्र उत्तरदायित्व है। वहां हम विनयशील बन गये हैं। वहां हम "यथासाध्य तथा शक्ति" की बात करने लग गये हैं। जो हमारा मुख्य उत्तरदायित्व है। उसको मौलिक अधिकारों में स्थान नहीं मिला। और इसी लिये जो इसमें इस तरह की बात देखने की आशा करते थे, उनको संतोष नहीं होता। हमारे यहां भिखमंगे, लूले, कोढ़ी, लंगड़े और अंधे, सड़कों पर मारे-मारे फिरते हैं और चलने वाले राहगीरों को परेशान करते हैं और पैसा दो पैसा चिल्लाते रहते हैं। उसको रोकने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं है। ओर इसको रोकने की जिम्मेदारी सरकार ने अपने ऊपर नहीं ली है। हम यथासाध्य और यथासाधन आदि बातें यहां करते हैं, यह उसकी बड़ी भारी खामी है। उसमें स्पष्ट रूप से गायों और दूसरे पशुओं के वध करने पर निषेध होना चाहिये था। हमने बहुत समय से खुले तौर पर पशुओं और गायों के वध को रोकने के लिये आन्दोलन किया—यहां की जनता "गां मा हिंसाः, यजमानस्य पशून् पाहि" के मंत्र पढ़ती रही है। लेकिन हमने इस विधान में इस स्थान पर यह नहीं कहा कि वह उसी भावना में पली है। गोहत्या नर हत्या के समान मानी जायेगी और उसको रोक दें। यह भावना उसके अन्दर नहीं है। यह खटकने वाली बात है।

इसके बाद जो यूनियन गवर्नमेंट के ढांचे का, उसकी इक्जीक्यूटिव का, उसके लेजिस्लेचर का, उसके जुडीशरी का उल्लेख है उसमें कोई नवीनता न आ सकती थी न आई है, यह तो एक रूढ़िवाद है, वैसे ही संसार भर में चलता है। वैसे ही इसका ड्राफ्टिंग गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के अनुसार है। बदले हुए वातावरण में थोड़ा बहुत अन्तर जरूर है। इसी प्रकार प्रान्तीय तथा स्टेटस की धारा सभाओं, एक्जीक्यूटिव तथा न्याय विभाग, हिसाब किताब, नौकरियों आदि के सारे कार्यकलाप का विस्तृत विवरण और रूपरेखा भी प्रायः वही है जो 1935 के विधान में मिलती है। मगर उन मांगों को पढ़ने से भी जो चीज़ खटक जाती है—वैसे

[श्री अलगू राय शास्त्री]

हनुमान वाले एलीमेंट को, उनके जैसे देशभक्तों और राम भक्तों को। वह क्या हैं? जिनके सम्बन्ध में दो शब्द निवेदन करना आवश्यक प्रतीत है। वह प्रश्न यह है कि हमारा कराची रेजुलेशन के साथ कितना सम्बन्ध रह गया है। उसमें जनता को अपने साथ लाने के ख्याल से पांच सौ रुपये का वेतन नियत किया गया था। आप देखेंगे कि इस सारे के सारे विधान में उस पांच सौ रुपये का कहीं ज़िक्र नहीं है। खर्चा बढ़ रहा है। हम पहले कहा करते थे कि दो धारा सभाओं की क्या जरूरत है, एक के ऊपर दूसरे का कंट्रोल अंकुश या नियंत्रण रखने की क्या जरूरत है? दो मंज़िला या दो तल्ला इमारत बनाने की क्या जरूरत है—अपर चैम्बर और लोअर चैम्बर। मगर हम देखते हैं कि इस विधान के अनुसार करीब करीब हर सूबे में दो हाऊसेज़ रख दिये गये हैं। खर्चे को बहुत बढ़ा दिया गया है, मगर उत्पादन को बढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है। गवर्नमेंट का खर्चा बढ़ाने के सारे साधन इसमें जुटा दिये गये हैं। हमने जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में अधिकार कम छोड़े हैं, हमने उन पर विश्वास नहीं किया है। उनकी संख्या भी बहुत बढ़ा दी गई है जिनका भार उत्पादक जनता पर ही अन्त में पड़ता है। हमने सबकी तनख्वाहें, सारे दिये जाने वाले भत्तों तथा और रहन सहन की सुविधाओं तथा अन्य सारी आवश्यक चीजों का ज़िक्र तो किया है किन्तु इसका ज़िक्र करते हुए हम सर्वथा भूल गये हैं कि जिस जनता की सींग पर यह पूरी पृथ्वी नाच रही है, जिस जनता की रीढ़ की हड्डी पर यह सारी अट्टालिका उठाई गई है, उसका स्तर कैसा हो। हम आज सरकारी लोगों की प्रशंसा करते हुए उनकी सुविधा देखते हैं। सरकारी कर्मचारी कोई विदेशी तो नहीं हैं। वह अपने ही भाई हैं, सब अपने सगे हैं, जब उन की प्रशंसा की जाती है और उनका कंट्रास्ट करते हुए उनकी तनख्वाहों का ज़िक्र होता है, और कहा जाता है कि क्या कांग्रेसमैनों को यह काम सिपुर्द किया जाय क्योंकि वही सदा मरते खपते रहें हैं। मुझे यह कहना पड़ता है कि कांग्रेसमैन हमेशा ही अपने को जाति की इमारत की नींव के कोनों को बनाने में लगे रहे हैं और ऐसे ही लगे रहेंगे। उन्हें सरकारी नौकरियों की कोई भूख नहीं है। उनके जीवन का आदर्श उत्सर्ग है—भोग नहीं। इस समय मुझे अपनी एक कविता याद आ जाती है:—

"देश जाति हित नींव के हम कंकड़ होवें।
आसुरि सम्पत्ति नारि के कत कंकण सोहें।"

अर्थात् हम अपने देश तथा जाति के कल्याण की इमारत के बुनियाद में पड़ने वाले कंकड़ पत्थर हों। हम सुन्दर सम्पन्न स्त्रियों और विलासिनियों के हाथ में शोभा पाने वाले सुखों के कंकण न बनें—हमारे जीवन का यह आदर्श हो।

कोई कांग्रेसी, कोई कांग्रेसजन जो सन् 1920 से इमसें खट रहा है वह किसी इमारत के बनाने में सामने का पत्थर नहीं बनना चाहेगा। वह जाति की सेवा में अपने जीवन को अर्पित करना अपना काम समझेंगे। नौकरियों के सम्बन्ध में जब सभी वेतनादि सुविधाओं का उल्लेख होता है तो वह केवल इस कारण कि हमने तनख्वाहों का विषय तो लिया लेकिन जो जनता बरसों से मरती रही, शोषित होती रही, हमने उसको

भुला दिया। मैं आपका ध्यान उसकी तकलीफ़ों की तरफ़ दिलाता हूं। हमने उन अभागों को छोड़ दिया उसकी तरफ हमारा पर्याप्त ध्यान नहीं गया है। यदि उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जायेगा तो निश्चित रूप से मैं आपसे कहता हूं कि उसे खटकेगा और वह समझेगा कि हम व्हाइट बिरोक्रेसी से निकल कर एक ब्राउन बिरोक्रेसी के नीचे आ गये हैं। हमारे अपने जीवन का स्तर ऊंचा नहीं हो सकता किन्तु हमारे नौकरों के जीवन का स्तर ऊंचा बनाने को हम परेशान हैं। जनसाधारण, कि जो कमाने वाले हैं जिनकी कमाई से ही यह सारा ढांचा बना हुआ है, उनकी चिन्ता किसी को नहीं है। उत्पादन की ओर हमारा ध्यान गया है जो अपेक्षाकृत सुखी हैं, सम्पन्न हैं, और दिन रात हम उनका ख्याल रखते हैं जिसमें वह बिगड़ न जायें, बिगड़ कैसे जायेंगे? हमने ही देशभक्ति का जामा नहीं पहना है उसके दिल में भी देशभक्ति है।

श्रीमान जी, आपका अपना जीवन तपस्यामय रहा है, पंडित जवाहरलाल जी का जीवन तपस्यामय रहा है, सरदार साहब का जीवन तपस्यामय रहा है, आपने राजसी जीवन नहीं व्यतीत किया है, राज्य या पैसे के लिये आज आपने सत्ता ग्रहण नहीं की है, उत्पादक के लिये, जनता के लिये, आप यहां आये हैं, उसके पास पैसा थोड़ा है, उसकी क़ीमत पर लोगों के देश का जीवन बिताने की ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता। जनता के जीवन के स्तर को ऊंचा करने की ज़िम्मेदारी लेनी चाहिये, और वह इस विधान में नहीं है।

मैं एक दो चीजों की तरफ़ और ध्यान दिला कर अपनी बात समाप्त करता हूं। यह मैंने केवल इस कारण कहा कि इसी तरह के कारण हैं जो विरोधियों को इसकी आलोचना करने का अवसर देते हैं। और देशभक्त ऐक्शन को यह चीज खटकती है। मैं एक बात आपसे कहना चाहता हूं और वह यह कि हमने जो ढांचा बनाया है उसमें केन्द्र के पास बहुत अधिक शक्ति आई है। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का नियंत्रण हमारे ऊपर पहले था, रियासतें जो हमें मिली हैं उनके ऊपर हमारा खास नियंत्रण है। वैसा ही नियंत्रण रहा तो इनीशियेटिव (initiative) मारा जायेगा। और केन्द्र दुर्बल हो जायगा। हमारी केन्द्रीय सरकार दुर्बल होगी तो हमारे जो अंग हैं वह भी दुर्बल हो जायेंगे, और हमारा राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। लेकिन यदि केन्द्र इतना बलिष्ठ हो जाये, कि औरंगजेब की तरह से अंगों को, अपने पुत्रों को डांटता रहे तो प्रजा की जिम्मेदारी लेने वाला कोई नहीं होगा। इस लिये दोनों में सामंजस्य होना चाहिये। रक्षा के प्रश्न प्रर अवश्य नियंत्रण होना चाहिये—हमको देखना है कि कश्मीर की तरफ से कोई इनफ़िलट्रेशन तो नहीं होता है। आसाम की ओर से कोई इनफ़िलट्रेशन (infiltration) तो नहीं होता है। शत्रु किसी ओर से घुसता तो नहीं है। हम वहां पर अंगों पर अंकुश रखने की चेष्टा करेंगे, किन्तु सामान्यत: प्रतिबन्धों से केन्द्र अपने अंगों को पूर्णत: विकसित होने से रोकेगा नहीं। किसान को देखिये, जमे हुए खेत की रखवाली करता है, उसको हरही गाय तथा अन्य बनैले पशुओं से बचाता है, लेकिन बीज बोने के बाद से वह निकाल निकाल कर देखता नहीं कि उसमें अंकुर निकले या नहीं। इसलिये यदि छोटी-छोटी बातों में छेड़खानी की गई तो यह छेड़छाड़ केन्द्र को दुर्बल बना देगी, और अंग को भी दुर्बल बना देगी। एक बात मैंने देखी, अभी यू.पी. ने अपना नाम "आर्यावर्त" निश्चित करके भेज दिया। केन्द्र के आदमियों को लगा कि यह नाम एक निंकम्मी बात है। नाम रखने की बात, मैं उदाहरण के लिये कहता हूं, यदि हमने वह

[श्री अलगू राय शास्त्री]

नाम रख लिया, यह यदि आर्यावर्त हो गया तो इसका अर्थ यह कैसे हो गया कि शेष सारा देश अनार्यावर्त हो जायेगा। अब आप देखें "पाकिस्तान" ने अपना नाम पाकिस्तान रख लिया तो, क्या हिन्दुस्तान नापाकिस्तान हो गया? क्या पाकिस्तान के अतिरिक्त सब नापाकिस्तानी हैं? हमारे नेताओं ने समझौते से पाकिस्तान नाम स्वीकार किया था। इसी प्रकार आर्यावर्त हो सकता था। इससे दूसरे प्रान्त अनार्यावर्त न होते। अस्तु यह तो एक उदाहरण की बात है, आपने इसको पसन्द नहीं किया, हम इसे बदल देंगे, किन्तु यदि इस प्रकार की बातें होती रहेंगी तो सार्वजनिक स्वतंत्रता कहां रहेगी? लोकल इनीशियेटिव कहां रहेगी? हमारे जो अंग हैं उनमें आज अपने आप को विकसित करने की शक्ति होनी चाहिये इस प्रकार के हस्तक्षेप से वह रहेगी क्या? इस प्रकार से जो अंग आपने बनाये हैं वह अंग नष्ट हो जायेंगे। इसलिये चाहिये यह कि केन्द्र कम से कम हस्तक्षेप अंगों के साथ करे। इस सम्बन्ध में मुझे अंग्रेजी के ये शब्द स्वभावत: याद आ जाते हैं कि:—दैट गवर्नमेन्ट इज़ दि बेस्ट गवर्नमेन्ट ह्विच गवर्न्स दि लीस्ट—वही शासन सर्वश्रेष्ठ है जो कम से कम शासन करता है—यह महावाक्य इस मामले में बिल्कुल चरितार्थ होता है कि हमारे केन्द्र की ओर से असामान्य नियंत्रण न हो, संरक्षण हो, सुझाव हो। पग पग पर छेड़खानी न जारी रहे जिससे कि लोकल इनिशियेटिव बना रहे। इस तरफ मैं आपका ध्यान दिलाऊंगा।

शंकररावजी की यह बात मुझे पसन्द आई है कि इमसें जो गांधियन आउटलुक है, हिन्द स्वराज्य की धारायें हैं, वे इसमें नहीं दिखाई पड़ती हैं। मगर मैं उनसे और अपने विचार के दूसरे मित्रों से कहना चाहता हूं कि चाहे जैसे भी हो, चाहे डॉक्टर अम्बेडकर ने पंचायत का पहले मज़ाक उड़ाया हो, लेकिन पंचायत को इसमें स्थान है। ग्रामोद्योग के लिये इसमें स्थान है, इसमें मद्यनिषेध की बातों का जिक्र आया है। इसकी यह महानता है कि अछूतों की समस्याओं को इसमें हल कर दिया गया है, इसकी महानता है कि हमने जनसाधारण को बालिग मताधिकार, मत देने का अधिकार दे दिया है। यह सारी चीजें इसकी महान विशेषतायें हैं और इन विशेषताओं को देखते हुए हमें यह समझना चाहिये कि राष्ट्रपिता गांधी जी की आत्मा को इन बातों से सुख मिलेगा।

अब एक बात और कह कर मैं अपना कथन समाप्त करता हूं जिसके कारण यह विधान भारतीय जनता रूपी हनुमान को प्यारा नहीं है। वह यह देखती है, जनता देखती है कि यह विधान मणियों की माला है या नकली मणियों की। पन्ना की खानों से निकले हुए पन्नों की है, गोलकुण्डा के हीरों की है या यह माला कांच की है। वह इसे कांच की माला समझती है। जिस भाषा में यह विधान बना है वह जनता की भाषा नहीं है, जनता की भाषा वह भाषा है जिसमें, उत्तर भारत में आप देखेंगे, कि सूर की कवितायें हैं, तुलसी का महाकाव्य है। आज तो मुझे बहन दुर्गाबाई ने जो तेलगू की कविता सुनाई थी वह मैं कण्ठ नहीं कर सका लेकिन पढ़ देता हूं, उसके शब्द तेलगू के हैं:

"मंदार-मकरंद-माधर्यमुना देलु मधुपम्बु पोऊने मदन मुलको?
निर्मल मन्दाकिनी वीचिकल दूगु रायंज चुनने कुटज मुलको?

अम्बुजोदर दिव्य पादारविन्द चिन्तनायुत मत्तचित मेरीति।
नितरम्बु चेरनेत्मु विनुत गुण शील माढल वेइनेल।

उसके शब्दों को मैं देखता हूं जो उसके शब्द हैं उनको आप देखें तो कोई भी शब्द आपकी उत्तर पूर्व की हिन्दी का ऐसा नहीं मिलेगा जो इतना संस्कृत के मूल रूप से सम्बन्धित हो जैसे इस तेलगू की पूर्वता के शब्द हैं। यह सारे ही हिंदी के शब्द हैं। इन तेलगू के गीतों की तुलना कीजिये तुलसी के इन पदों से:

"मानस सार्ल सुधा प्रतिपाली। जिअई कि लवण पयोधि मराली।।
नव रसाल-वन विहरण शीला। सोह कि कोकिल विपिन शीला।।

आप ज़रा देखें कि हिमालय से कन्या कुमारी तक यह भाषा बोली जाती है। बंदे मातरम् का गान सीधा संस्कृत का गान है। यही हमारा राष्ट्रीय गान रहा है। "वैष्णव जन तो तेणें कहिये जिन पीड़ पराई जाणे रे" सीधा संस्कृत भाषा का सा गान है। यही गान महात्मा गांधी को प्राणों से प्यारा था। सारे देश की जो व्यापक भाषा है उसमें विधान नहीं है। श्रीमान जी आपकी अध्यक्षता में मुखारबिन्द से यह शब्द निकले थे कि अपने राष्ट्र का विधान अपनी भाषा में होगा। आज जिस विधान को यह विधान परिषद् पास कर रही है वह भाषा हमारी भाषा नहीं है। संथानम जी ने कहा कि इस विधान को व्यापक बनायें, सर्वसाधारण तक पहुंचायें। पहुंचायें कैसे? संस्कृत के द्वारा बुद्ध भगवान् ने अपने धर्म का प्रचार नहीं किया था। उन्होंने पाली भाषा को जो जनता की भाषा थी अपनाया था। महात्मा गांधी ने जब कांग्रेस के रंगमंच को जनता का रंगमंच बनाया तो अंग्रेजी को हटा कर हिन्दुस्तानी में, सरल हिन्दी में भाषण करना प्रारम्भ किया था। इसी तरीक़े से यह चीज तभी बन सकती है जब अपनी भाषा में विधान पास हो। अपनी भाषा का विधान ही सर्वसाधारण तक जा सकता है। "पापुलर" हो सकता है। पीपुल की भाषा के बिना वह पापुलर न होगा।

मैं एक और निवेदन करके बैठ जाऊंगा। मैं आशा करता हूं कि जनवरी में जो आप दो तीन दिन के लिये हाउस को बुलावें, तब तक विधान का हिन्दी में रूपान्तर हो जाये और यदि हम उस की धाराओं के ऊपर विचार न करें तो कम से कम दो तीन दिन का जनरल डिसकशन करके उसके ऊपर इस हाउस की मुहर लगवा दी जाये। श्रीमान जी, आप इस हाउस के मुकुटमणि हैं। अगर आपके हाथ से वह पास हो जायेगा तो भी उसका वही मूल्य होगा। किन्तु यदि इस हाउस में उस पर विवाद हो जायेगा और उस पर हाउस की मुहर लग जायेगी तो हम जनता के सामने जा कर कह सकेंगे कि सदियों की गुलामी को भंग करने वाले हमारे पुरुषोत्तमों ने, हमारे नेताओं ने, हमारे राष्ट्र के संचालकों ने, हमको वह निधि दी है, जो किसी जाति को कभी सौभाग्य से प्राप्त होती है और यह वह निधि है जो पराधीनता की कड़ियों के टूटने के बाद तुम्हें प्राप्त हुई है।

इन शब्दों के साथ बड़ी श्रद्धा से आपके सामने नतमस्तक होता हूं कि आपने यह अवसर दिया जो कि मेरे राजनीतिक जीवन में एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षण है

[श्री अलगू राय शास्त्री]

जो कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सन् 20 से स्वतन्त्रता की लड़ाई में रहने और तरह-तरह की यातनाओं से गुजरने के बाद स्वतन्त्रता की घोषणा करने का अवसर मिला और उस अवसर पर बोलने का अवसर जीवन में आपकी अनुकम्पा से मिला है। इसके लिये मैं आपको अनेक धन्यवाद देता हूं।

***अध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार दिनांक 22 नवम्बर, सन् 1949 के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-347 PSD–7-1-53–320